स्वास्थ्य का मूलमन्त्र

(सचित्र)

891.2 G 87 B
6346

लेखक

पं० भानुदत्त वैद्य मुलतानी

रचयिता—दम्पतिरहस्य, स्वास्थ्य आदि, परीक्षक-अखिल
भारतीय आयुर्वेद महामण्डल व विद्यापीठ,
इंचार्ज मुलतानी फार्मेसी, अ० प्रोफैसर
...नन्द आयुर्वैदिक कालेज
लाहौर, आदि

परिमार्जक

कविराज श्री पं० ठाकुरदत्त वैद्य मुलतानी, शास्त्री
वैद्यरत्न

राजपाल एण्ड सन्ज़

अनारकली - लाहौर

थम संस्करण] [मूल्य २)

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
दो शब्द	क
ब्रह्मचर्य्य की आवश्यकता	१
ब्रह्मचर्य्य क्या है ?	७
ब्रह्मचर्य्य महिमा व लाभ	१०
वीर्य्यनाश के कारण	१८
हस्तमैथुन	१८
पुंस्त्वमैथुन	२१
पशु मैथुन	२३
वीर्य्यनाश से हानियां	२७
क्षय	२९
स्वप्नदोष	३१
प्रमेह	३४
नपुंसकता	३५
बालिकाएं व ब्रह्मचर्य्य	३८
मासिक धर्म्म	४५
प्रदर	४६
हिस्टीरिया	४८
अष्टमैथुनों से बचो	४९
एकान्त सेवन	५४
स्पर्श	५४
वीर्य्यनाश करने वाले की पहिचान	५६

विषय	पृष्ठ
आयुर्वेद में ब्रह्मचर्य्य	५८
ओज	६३
डाक्टरी मत	६४
क्या ब्रह्मचर्य्य से हानि संभावित है	६५
भ० कृष्ण का ब्रह्मचर्य्य उपदेश	७२
ब्रह्मचर्य्य व धर्म्मग्रन्थ	८७
वीर्य्य ही जीवनाधार है	९२
ब्रह्मचारी का वास्तविक गुरु	९७
पिता व गुरु का कर्त्तव्य	९९
आदर्श ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणियां	१०६
स्वामी दयानन्द	१०६
स्वामी लक्ष्मीराम	१०८
प्रो० माणिकराव	१०८
स्वामी श्रद्धानन्द	१०९
महात्मा गांधी	११०
सुलभा	११३
जोन आफ आर्क	११४
फ्लोरेंस नाइटिङ्गेल	११५

विषय	पृष्ठ
मीराबाई	११७
वीर्य्यरक्षा के सन्नियम	११८
नियमितता	११९
फ्रैंकलिन की दिनचर्य्या	१२३
यथा स्थान वस्तु रखना	१२४
प्रातः जागरण व कृत्य	१२५
व्यायाम	१२७
आसन	१२९
स्नान व शुद्धता	१३३
प्राणायाम	१३७
ईश्वर प्रार्थना	१४३
प्रार्थना	१४४
स्वाध्याय	१४५
आहार	१४६
ब्रह्मचारी के उपयुक्त भोजन	१५०
उपवास	१५५
निद्रा	१५७
तीन सकार (सादगी, सत्सङ्ग सततोद्योग)	१६०
चरित्र की उच्चता	१६६
निर्व्यसनता	१७०
दृढ़ प्रतिज्ञा	१७१
स्वप्नदोष-प्रमेह चिकित्सा	१७४
स्त्री रोग चिकित्सा	१७९
उपकुर्वाण ब्रह्मचारी	१८१
सदाचार शिक्षा	१८३

ब्रह्मचर्य्य की आवश्यकता

एक कहावत है कि 'पौधे को जैसा झुकाओगे, वैसा ही पेड़ होगा' इस की यथार्थता में कुछ भी सन्देह नहीं। इसी प्रकार हम अपने छोटे बालक बालिकाओं को जैसा बनाना चाहें, वह वैसे ही हो जायेंगे। माता पिता अपने बच्चों को उच्च शिक्षा देते हैं, और उनकी आन्तरिक इच्छा होती है कि जैसे भी हो हमारी सन्तति उच्च बने, परन्तु दुःख यह है कि इस सारे जीवन का मूलभूत जो ब्रह्मचर्य्य है, उस ओर हमारे माता पिता या आचार्य्य किञ्चित्-मात्र भी ध्यान नहीं देते। इसी के परिणाम-स्वरूप हमारे जिज्ञासु बालिकाओं को यह पता नहीं होता कि ब्रह्मचर्य्य क्या है ? हम में से बहुतों ने तो अठारह बीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य्य का नाम भी नहीं सुना होता। मुझे इस समय तक अठारह वर्ष से ऊपर का एक भी युवक ऐसा नहीं मिला जो अपनी छाती पर हाथ रख कर कह सके कि 'मैं ब्रह्मचारी हूं'।

इसका सर्वतो मुख्य कारण माताओं में इस महत्व पूर्ण विषय का अज्ञान है। सब से पहिले बालक का सम्बन्ध माता से ही होता है और वह क्या कुछ कर सकती है, यह पाठक "ब्रह्मचारी का वास्तविक गुरु" नामक शीर्षक में आगे पढ़ेंगे।

बालक का शरीर ११—१२ वर्ष तक की अवस्था में काफ़ी बढ़ चुकता है, और अभी उसके वास्तविक बढ़ने का समय और बाकी होता है। उसकी शारीरिक, मानसिक, व विचार (मस्तिष्क) शक्ति ने अभी बढ़ना है । और यह अवस्था १२ वर्ष से लेकर २२–२५ वर्ष तक होती है। डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी एक कहानी में लिखा है कि चौदह से अट्ठारह वर्ष के बीच की आयु ऐसी है कि जिस में बालक पूर्णतया सुधर सकता है या उसका जीवन सदा के लिये भ्रष्ट हो जाता है। इस में कोई सन्देह नहीं कि यही आयु है जब कि बालक में एक असाधारण परिवर्तन आता है न केवल मूछों या बाल आदि का जमना, या लम्बा होना ही, किन्तु उसके अन्दर हर एक बात के पूर्ण ज्ञान की इच्छा और उसकी प्राप्ति के लिये उत्सुकता होती है। वह जो कुछ देखता सुनता या जानता है, उसके विषय में नाना प्रश्न किया करता है। और यदि हम ध्यान से देखें तो वह उनके उत्तर बहुत जल्दी ग्रहण कर लेता है और देर तक या सारी आयु ही नहीं भूलता।

वह अच्छी खेलें खेलना चाहता है, अच्छे कपड़े या जो भी उसके दृष्टि-कोण के आदमी पहिरते हों, पहिरना चाहता है। एक दो मित्र बना लेता है, जो कुछ भी वह देखता सुनता है, उसे स्वयं सोचने लगता है और यदि स्वयं समझ न आये तोफिर उन से पूछ लेता है। और ऐसी एक नहीं अनेक बातें होती हैं। सिनेमाओं के अश्लील दृश्य, माता पिता का पारस्परिक जीवन, या बाज़ार में पशुओं का सम्मिलन आदि कई एक बातें

होती हैं, जिनके पूछने पर वह माता पिता से सन्तोषजनक उत्तर नहीं पाता। और वह उनका उत्तर अच्छा हो या बुरा उन्हीं मित्रों से पाता है। ऐसी बातों के ज्ञान के साथ उसमें लज्जा का भाव भी बढ़ने लगता है और वह स्नान के समय या बड़ों से बातचीत करते समय स्पष्ट प्रकट हो जाता है।

ऐसी बातों का अज्ञान न केवल उस समय के लिये ही अज्ञान रहता है किन्तु आयु भर के लिये उसके जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर देता है और उसके अन्दर पुरुषत्व शक्ति, स्वास्थ्य, प्रसन्नता नाम मात्र को भी नहीं रह जाते। कारण क्या कि, हम ने यह चाहा था कि इन बातों का ज्ञान उसे न हो, यह हमारी एक झूठी लज्जा थी जिसके वशीभूत होकर हम ने यह न सोचा कि यदि यह बातें वह किसी और से प्राप्त कर लेगा तो क्या होगा ? उसके संगी साथी उसे किस प्रकार व किस ढंग से सिखायेंगे। उनका सिखाने का ढंग कितना बेहूदा व गंदा होगा। और वह निर्दोष बालक अपने साथियों का कहना मान कर उन बातों पर विश्वास व आचरण भी प्रारम्भ कर देगा। यदि माता पिता कुछ बड़े होने पर कोई इस विषय की सम्मति भी देना चाहते हैं तो उनका लाल चुप है। कारण कि जो कुछ माता पिता कहने वाले हैं, वह सब उसे पहिले ही मालूम है। उनका कहना तो तब सार्थक होता यदि वह आज से ६–७ वर्ष पहिले कहा जाता।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि बच्चों को यह सब बातें ११—१२ वर्ष की आयु में पता हों। चाहिये तो यह कि उन्हें धीरे धीरे प्राकृतिक ढंग से सभी बातें समझाई जायं। जो

कुछ भी हम समझायें वह पूर्ण सत्य हो, चाहे वह सब कुछ न भी हो। समझाते समय प्रेम भरा हो, और सत्यता के साथ ऐसा प्रयत्न हो कि धीरे धीरे बालक का ज्ञान इस विषय में भी पूर्ण हो जाय। प्रकृति-नियम के अनुसार भी एक न एक दिन वह सभी कुछ अवश्य सीख लेगा। फिर उसमें क्यों न धार्मिकता या कर्तव्याकर्तव्य का भाव आ जाय और वह इस ज्ञान को एक पवित्र ज्ञान समझ ले, जिसकी कि उसने अपनी इच्छा शक्ति से पालना करनी है।

बहुत सी बातें ऐसी थीं, जो वह अपने गुरु या अध्यापक से भी सीख सकता था, परन्तु माता की तरह गुरु ने भी कुछ न समझाया, अब उसके बतलाने वाले केवल दो ही रह गये एक तो प्रकृति दूसरा उसका साथी गुरु। प्रायः यह देखा जाता है कि यह साथी गुरु ही बालक को नरक की ओर धकेलने, पाप के कुएं में गिराने, या उसके शरीर का नाश करने में सहायक हुआ करते हैं। और हम प्रतिदिन देखते हैं कि हमारे बालकों का ऐसा नाश बढ़ती पर है। अच्छी अच्छी संस्थाओं में भी ऐसे साथी गुरु पाये जाते हैं।

सब से पहिले शिक्षक (माता पिता व गुरु) शिक्षा न दे सके और न ही वैसे भी आजकल नवयुवक, व युवतियां अपने बड़ों से कोई उपदेश या सलाह लेना पसन्द करते हैं। इन को तो कोई समवयस्क अन्तरङ्ग मित्र या ऐसी पुस्तक चाहिये, जिसमें कि उन को मन चाही बात मिल जाय। पहिले का भले रूप में मिलना कठिन है। इसी लिये दूसरी बात की पूर्ति के लिये यह पुस्तक आप की सहायता को आती है।

इसमें न केवल धार्मिक बातें या आदर्श हैं, किन्तु वैज्ञानिक, भारतीय व पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली के आधार पर ऐसी बातें मिलेंगी, जिन्हें कि हम सहज में कार्य्यरूप में परिणत कर सकें, ऐसी कई बातें जैसी की तैसी ही उद्धृत कर दी गई हैं।

सर आर्चडल रीड लिखते हैं:—'यदि सभी बच्चों को, शिक्षा पूर्ण ढंग से एक विशेष आदर्श के अनुसार दी जाय, तो हम में से सभी बुराइयों को दूर होते एक पीढ़ी का समय भी न लगे'।

भानुदत्त वैद्य मुलतानी (लेखक)

* ओ३म् *

स्वास्थ्य का मूलमन्त्र अर्थात् ब्रह्मचर्य्य

ब्रह्मचर्य्य क्या है ?

ब्रह्मचर्य्य का प्रचलित अर्थ "वीर्य्य-रक्षण" है। कहा भी है कि "वीर्य्य-धारणं ब्रह्मचर्य्यम्" अर्थात् वीर्य्य धारण को ही ब्रह्मचर्य्य कहते हैं। आज कल प्रायः हम लोग जननेन्द्रिय विकार के निरोध को ब्रह्मचर्य्य मानते हैं; जहां कि विषयमात्र का, मन, वचन व कर्म से, सभी अवस्थाओं में, सभी प्रकार के विषयों का त्याग ही ब्रह्मचर्य्य है।

विद्वान् लोग 'ब्रह्म' व 'चर्य्य' के भिन्न भिन्न अर्थ करते हैं। जिन में से 'ब्रह्म' का मुख्य अर्थ—जल, वेद व परब्रह्म और 'चर्य्य' का—रक्षण, प्रयत्न व भक्ति करना लेते हैं।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य्य शब्द का पहिला अर्थ वीर्य्य रक्षण, दूसरा वेद के लिए प्रयत्न करने वाला अर्थात् पढ़ने वाला तीसरा परब्रह्म (परमेश्वर) की भक्ति करने वाला हुआ। "ब्रह्मणा ज्ञानादिना सह चरतीति ब्रह्मचारी," इस से स्वयं सिद्ध हो गया कि ब्रह्मचर्य्य का शाब्दिक रूप क्या माना जाता हैं और एक ब्रह्मचारी का क्या कर्तव्य है।

शास्त्र के अनुसार ब्रह्मचारी का धर्म्म, वीर्य्य की रक्षा करना, वेद व विद्या के अध्ययन के लिये प्रयत्नशील रहना व परब्रह्म अर्थात् परमेश्वर की भक्ति करना हुए। इन में से यदि एक भी छूट गया, तो व्रत का पालन पूर्ण न होगा।

हमारे बहुत से नवयुवक व युवतियां आजकल प्रायः जननेन्द्रिय विकार के निरोध के लिये प्रयत्न करते हुए पाये जाते हैं। परस्त्री या पुरुष दर्शन, सिनेमा म प्रेम के नग्न दृश्य, व भोजन में प्रतिदिन अनेक प्रकार की चटपटी वस्तुएं जैसी की तैसी चलती रहती हैं। और खाली समय मिलने पर चन्द्रकान्ता, लण्डन रहस्य या ऐसी अन्य पुस्तकें भी नहीं बचतीं, तब भला

ऐसा निरोध कब तक टिक सकता है। इस के लिये तो त्याग व तप की आवश्यकता है :—

न तपस्तप इत्याहुः, ब्रह्मचर्य्यं तपोत्तमम्।

अर्थात् विषयमात्र का पूर्ण निरोध ही सब से अच्छा तप है। प्राचीन काल में आश्रमों का क्रम इसी लिये बना था कि पहिले पच्चीस वर्ष तक, ब्रह्मचर्य्य का पालन कर गृहस्थ के आश्रम को सुचारुरूप से चलाने के लिये, मज़बूत हो जावें और पुनः अवशिष्ट दो आश्रमों (वानप्रस्थ व संन्यास) द्वारा जगत् का उपकार कर सकें। उपनयन व गुरु के कुल में भेजना भी ब्रह्मचर्य्य का ही द्योतक है।

ब्रह्मचर्य्य की महत्ता व उस के पालन में आने वाली कठिनाइयों को समझते हुए ही हमारे पूर्वजों ने आज्ञा की थी कि तुम्हें आठों व अन्य कृत्रिम मैथुनों से बचना होगा, चाण्डाल पेट को काबू करना व जीभ के स्वाद को हटाना होगा, और केवल शरीर की रक्षार्थ ही सात्विक अन्न खा गुज़ारा करना होगा। यह सब एक बार में ही न हो सकेगा। इस के लिये अभ्यास व सांसारिक सुखों से वैराग्य की आवश्यकता है।

आजकल जैसा भी सांसारिक जीवन हमारे सामने है, उसी में हमें उन्नति करनी होगी। जो बालक या बालिका गुरु किंवा ऋषिकुल में नहीं पहुंच सकते, उनके लिये यही एक उत्तम उपाय है। रास्ता चलते हुए यदि उन से किसी स्त्री का स्पर्श अनजाने में हो जाय, तो चान्द्रायण व्रत की आवश्यकता नहीं। यदि हमारी माता या बहिन को कोई कष्ट (रोग) है, तो उनकी सेवा के लिए उनका छूना पाप नहीं। केवल विचार इस बात का रहना चाहिये कि स्त्री-शरीर के स्पर्श से हमारे अन्दर कोई कुविचार या कुभावना न उठे। उसके स्पर्श से कोई ऐसी बात, जिस के कारण हमारे मन में पाप वासना का लेश भी उत्पन्न हो, न होनी चाहिए। अपनी सम्बन्धिनी

तो क्या यदि किसी अन्य देवी की सेवा भी करनी पड़े, तो भी हमारे अन्दर 'हम माता की सेवा व स्पर्श कर रहे हैं' के अतिरिक्त अन्य भाव न आवे; तभी हमें समझना चाहिए कि हमारी सेवा ठीक है और हम अपने आदर्श की ओर अग्रसर हो रहे हैं। यदि हमारे अन्दर भूल से कभी पाप-वासना जागृत होने भी लगे, तो हमें अपने मन में यह भाव लाना चाहिये कि हम एक मृत वस्तु का स्पर्श कर रहे हैं।

हमें अपने आप को धीरे धीरे देवता बनना होगा, ऐसा तभी हो सकेगा जब हम में ब्रह्मचर्य्य की भावना कूट कूट कर भरी हो, और हम सभी इन्द्रियों का निग्रह तथा विचार धारा तक को पवित्र बना चुके हों, सच्चे ब्रह्मचारी ऐसे ही होते हैं। हम यहां महात्मा गान्धी की ब्रह्मचर्य्य व्याख्या देते हैं :—

'The full and proper meaning of Brahamcharya is search of Brahma. Brahma pervades every being and can therefore be searched by diving into and realising the innerself. This realisation is impossible without complete control of the senses. Brahmcharya thus means control in thought, word and action of all the senses, at all times and in all places.'

'ब्रह्मचर्य्य का पूर्ण व वास्तविक अर्थ ब्रह्म की खोज करना है। ब्रह्म प्रत्येक जीव में व्याप्त है, अतः इस की खोज अपने आप में भी अनुभव की जा सकती है। परन्तु यह अनुभव अपनी समस्त इन्द्रियों पर पूर्ण दमन किये बिना असम्भव है। अतः ब्रह्मचर्य्य मन, वचन व कर्म से हर समय प्रत्येक स्थान पर सभी इन्द्रियों का पूर्ण संयम हुआ'।

ब्रह्मचर्य्य, स्वाध्याय, सत्संगति, उच्च विचारों का धारण परब्रह्म की उपासना व अन्य सभी सद् नियमों का तत्व यही है कि स्वशरीरस्थ वीर्य्यरूपी शक्ति अपने आधीन हो जाय, जिस से न केवल हमारा शरीर, किन्तु आत्मा भी शक्तिशाली हो। हमारा शरीर व आत्मा शक्तिमय होने से ही हमारा देश सशक्त होगा, व संसार में अपना मान रख सकेगा।

ब्रह्मचर्य्य-महिमा व लाभ

'ब्रह्मचर्य्येण विन्दते आयुः'—वेद ।

ब्रह्मचर्य्य से आयु दीर्घ होती है ।

प्रायः हम में से बहुत से लोग यह समझते हुए भी कि ब्रह्मचर्य्य के साधारण लाभ कितने अधिक हैं, उस पर आचरण नहीं करते। यह हम लोगों की एक बड़ी भारी कमी है। यदि हम एक दो मिनट के लिये भी इस के लाभों पर विचार करें, तो कम से कम एक बार हमारे अन्दर यह निश्चय हो आयगा कि हमें इस महाव्रत का पालन पूर्ण-रूप से करना चाहिये। ब्रह्मचर्य्य एक ऐसा आश्रम या व्रत है कि जिस के आधारभूत हमारा जीवन, उन्नति, गृहस्थ के सम्पूर्ण सुख, वानप्रस्थ व संन्यास हैं। तुलसीदास ने तो इसे भगवत् प्राप्ति का भी साधन लिखा है:—

सत्य वचन अरु दीनता, परस्त्री मात समान ।
इतने पर हरि ना मिलें, तुलसीदास ज़मान ॥

संसार में दुर्बल, रोगी तथा आलसी व्यक्ति होना महा-पाप है; उसे हर एक आदमी दबाता रहता है और संसार में उसे पराजय या दुःख के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं होता। प्रायः सब रोगों का मूल ब्रह्मचर्य्य-हीनता ही है, फिर चाहे वह अपने कारण से या पैतृक-सम्बन्ध से हुई हो। हम प्रति-दिन देखते हैं कि विजय और प्रसन्नता शक्तिशाली को ही उपलब्ध होते हैं और शक्ति बिना ब्रह्मचर्य्य के दुर्लभ है।

किसी ने इसी भाव को लिखा भी है :—'To be weak is a great sin, victory and happiness go to the strong'

ऋषियों ने हमारा जीवन 'जीवेम शरदां शतम्' के अनुसार सौ वर्ष का ठहराया है अर्थात् पच्चीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य पूर्वक विद्याध्ययन, पचास वर्ष तक गृहस्थ व धनोपार्जन, पचहत्तर वर्ष तक योग व ज्ञान की प्राप्ति और अवशिष्ट काल में अपने ज्ञान व अनुभव के द्वारा दूसरों के जीवन सुधार के लिये यत्न व उपदेश करना। ब्रह्मचर्य्य का पालन इन सभी के लिये आवश्यक था। गृहस्थी कैसे ब्रह्मचारी हो सकता है, इसका सविस्तर पर्णन इस पुस्तक के अगले भाग में मिलेगा। परन्तु जिस सीढ़ी पर चढ़ कर हम ने संन्यास या दूसरों के जीवन सुधार तक की उच्चता को प्राप्त करना है, यदि उसकी नींव या निचला भाग ही ऐसा कमज़ोर बना दें, तो बाकी तीन में से एक का बनाना भी असम्भव हो जायगा। हमारी अपनी हानि के अतिरिक्त दुनियां हम पर हंसेगी। ब्रह्मचर्य्य काल में हमारा मुख्य कर्तव्य होता है कि हम अपने से बड़े की उचित आज्ञाओं का पालन करते हुए, विद्या पढ़ें, और जिस प्रकार से भी हो, सभी मैथुनों (आठों व कृत्रिमों) से बचते रहें।

गुरु या आचार्य्य कुल की स्थापना इसी निमित्त हुआ करती थी कि हमारे युवक व युवतियां शारीरिक, आत्मिक व मानसिक उन्नति कर सकें। वहां आचार्य्य के ऊपर ही सारा शिष्य का उत्तरदायित्व होता था। इतना होते हुए भी गुरु की हर प्रकार की आज्ञा पालन करने के लिये शिष्य बाध्य नहीं था। गुरु का पहिला उपदेश 'यान्यस्माकं सुचरितानि,

तानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि' अर्थात् जो अच्छे आचरण हों, उन्हीं का ग्रहण करो, अन्य आचरणों का नहीं, होता था। परन्तु आजकल हम न तो अपनी सन्तान को गुरुकुल आदि भेजने को उद्यत होते हैं और ना ही उन्हें शहर के गन्दे वातावरण से सुरक्षित रख सकते हैं। कुसंगति आदि के वशीभूत होकर वह अपने व्रतसे पीछे हट जाते हैं। हम सभी, यह इच्छा रखते हैं कि हम सुखी हों, धनवान् हों, हमारी दीर्घायु हो, और विवाह के अनन्तर हमारी सन्तान पूर्ण स्वस्थ व हृष्ट पुष्ट हो आदि, आदि। परन्तु इस सुख की प्राप्ति उन्हीं को होती है, जिन्हों ने कि ब्रह्मचर्य्य की पालना कर अपने अन्दर बल विक्रम की वृद्धि की है। ब्रह्मचर्य्य पूर्वक रहने में ही वास्तविक सुख या जीवन का आनन्द है।

आज सारा संसार उन्नति के पथ पर आरूढ़ है। आज भी संसार में अच्छे मस्तिष्क के कार्य्य करने वालों, विज्ञान के ज्ञाताओं, चित्रकारों व महायोद्धाओं की आवश्यकता है। अब भी यदि हम शारीरिक व मस्तिष्क शक्ति के मूलभूत कोष (खज़ाना) की रक्षा करें, तो हम भी उतने ही ऊंचे हो सकते हैं, जितने कि हमारे बहुत से पूर्वज हो चुके हैं और जिनका वर्णन हम सदा पढ़ते रहते हैं। विदेश के एक प्रसिद्ध एम.डी. (M. D.) डाक्टर लिखते हैं कि आजकल के युग में पच्चीस बर्ष पर्यन्त पूर्ण संयम से रहने का अर्थ, पैंसठ वर्ष से भी अधिक आयु तक जीवन का पूर्ण आनन्द भोगना है। जहां कि एक भारतीय की औसत आयु केवल तेईस वर्ष है।

हम लिख आये हैं कि सभी इन्द्रियों का संयम या वश

करना ही ब्रह्मचर्य्य है। जिस ने इन्द्रियों का निग्रह किया है, वही ब्रह्मचारी है। इन्द्रियों के वश करने में ही सुख है; जब इन्द्रियें वश में न रहें तभी दुःख होता है। योग भी चित्त की वृत्तियों के निरोध का ही नाम है। जब तक एक विद्यार्थी की चित्त की वृत्तियों का निरोध न होगा तब तक उसका मन विद्याभ्यास में न लगेगा। न तो उसका मस्तिष्क ठीक काम करेगा और नाही उसमें किञ्चिन्-मात्र उत्साह होगा। कितने ही हमारे देश के भावी जीवन के कर्णधार हमारे यहां आते हैं। कोई मस्तिष्क व स्मरण-शक्ति के लिये ब्राह्मीघृत चाहता है, तो दूसरा ब्राह्मीपाक या ब्राह्मी-शर्बत। मस्तिष्क व स्मृति शक्ति इन औषधियों के व्यवहार से अवश्य ठहर जाती है, परन्तु वह ब्रह्मचर्य्य के अभाव में कब तक ठहरेगी। उसके लिये न केवल ब्रह्मचारी किन्तु उर्ध्वरेता होने की आवश्यकता है। ऐसा होने पर आप में स्वयं ही धारणा-शक्ति व उत्साह भर आयेगा, आप श्रुतधी हो जायेंगे, जहां कुछ एक वार सुन लिया कि कण्ठस्थ हो गया। फिर कभी जल्द ही सिर दर्द या सिर में चक्कर न आयेंगे, ना ही कहीं और दर्द होगा। वीर्य्यनाश करने वाले को सब से पहिले सिर दर्द धर दबाता है। ऐसा आदमी विचार का काम नहीं कर सकता। सर्व प्रथम तो उसका दिल ही न लगेगा, तबीयत बेचैन रहेगी। यदि वह ज़बरदस्ती अपना मन लगायेगा भी तो उसे सिर दर्द आरम्भ हो जायगा। कभी अधिक परिश्रम से आधे सिर या सारे सिर का दर्द ही हो जाता है और हर समय रहने लगता है। ऐसी अवस्थाएं मस्तिष्क के रक्त की विकृति

के कारण होती हैं और यह विकृति वीर्य्य-नाश से ही आती है।

वीर्य्य की तुलना यदि हम एक भरी हुई नदी से करें, तो ठीक होगा। नदी का भरा हुआ जल किनारों से टक्कर खाता रहता है, उसका कुछ भाग छोटे छोटे नालों के रूप में इधर उधर चला जाता है, और छोटे छोटे गढ़ों में जाकर सूख जाता है, परन्तु यदि हम इसी महाशक्ति को अपने नियन्त्रण में रख कर काम लें तो इसी से कई चक्कियां, फैक्टरी के पहिये चल सकते हैं, बिजली पैदा हो सकती है। इसी प्रकार चाहें तो, आप वीर्य्य जैसी महान् शक्ति का व्यर्थ में नाश कर दें या उसी से अपने आप को तेजस्वी, मेधावी और परम शक्तिशाली बना लें।

वीर्य्य के कारण शरीर में गर्मी रहती है, इसी गर्मी की विद्यमानता से ही शरीर भली प्रकार कार्य्य करता है। इसके कम होने से स्नायु (Nerves) मस्तिष्क से अधिक शक्ति खर्च करेंगे। और अधिक खर्च हो जाने से रक्त के प्रवाह में कमी हो जायगी। उसके एक स्थान में देर तक पड़े रहने से सिर दर्द हो जाता है। प्रारम्भिक दर्द तो केवल शक्ति के ह्रास का ही परिणाम होता है। युवक पुरुष या युवती स्त्री में अधिक काम करने के अतिरिक्त सिर दर्द होने का कारण वीर्य्य नाश ही होता है। इसी प्रकार अन्य बहुत से रोग कब्ज, हाथ पाँओं में चिऊँटियां चलना, जुकाम आदि भी वीर्य्यनाश के परिणाम स्वरूप ही मिलते हैं। यदि हमारे अन्दर वीर्य्यरूपी अमोघ औषध हो तो, कोई कारण नहीं कि हमें यह सब रोग आ घेरें, हमारी संतान जैसी हम चाहें

वैसी न हो, या हमारे अन्दर अमोघ-वीर्य्यत्व की शक्ति न आ जाय, हम अपनी पूर्ण आयु न भोग सकें या अवशिष्ट तीन आश्रमों का पालन पूर्णतया न कर सकें। कहा है :—

अधर्म्मज्ञाः दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः ।

अर्थात् धर्म्म-रहित और दुराचारी लोग ही थोड़ी आयु पाते हैं। हम में से बहुत से युवक अपने जीवन के प्रारम्भिक भाग में किये पापों के कारण निराश होने लगते हैं और सोचते हैं कि हमारा जीवन अब किस प्रकार अच्छा हो सकता है। क्या हम भी फिर उबर सकते हैं? ऐसे सज्जनों को याद रखना चाहिये कि जब तक रोग की लापरवाही होगी तब तक वह बढ़ता ही जायगा। औषध लो, ईश्वर कल्याण करेगा। तीस वर्ष की अवस्था के अनन्तर भी बहुत से व्यक्तियों ने इस ब्रह्मचर्य्य व्रत को धारण किया और दस वर्ष में ही सदा के ब्रह्मचारी जान पड़ने लगे। स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा गांधी आदि का जीवन इसका प्रमाण है। (ऐसे व्यक्तियों का जीवन इस पुस्तक में आगे दिया है)।

पाठकगण! आशा है, आपने जान लिया होगा कि ब्रह्मचर्य्य का कैसा प्रताप है, इसके धारण से मनुष्य चिरायु, सुगठित शरीर वाला, विजयी, तपस्वी, व महावीर हो जाता है। इस व्रत का पालन शान्ति, कान्ति, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य व सन्तति के लिये भी परमावश्यक है। कहा भी है :—

चिरायुषः सुसंस्थानाः, दृढ़संहनना नराः ।
तेजस्विनो महावीर्य्याः, भवेयुर्ब्रह्मचर्य्यतः ॥

शान्तिं कान्तिं स्मृतिं ज्ञानमारोग्यञ्चापि सन्ततिम् ।
य इच्छति महद्धर्म्मं ब्रह्मचर्य्यं चरेदिह ॥

स्वास्थ्य का ब्रह्मचर्य्य के साथ क्या सम्बन्ध है यह आप आगे पढ़ेंगे, परन्तु यहां भी यह कहना उचित होगा कि एक ब्रह्मचारी को मूत्रेन्द्रिय सम्बन्धी कोई रोग (प्रमेह, सुजाक आतशक, नपुंसकता आदि) हो ही नहीं सकता । बाकी छूत के या अन्य साधारण रोग भूल से आ भी जांय, तो उसका शरीर ऐसा बलिष्ठ होगा कि उसका कुछ भी विगाड़ न सकेंगे। ब्रह्मचारी का शरीर ब्रह्मचर्य्य के तेज से व शीतोष्ण सहन करते रहने से वज्रोपम हो जाता है । यदि आपने २२-२५ वर्ष की आयु तक संयम का पूर्णतया पालन किया है तो आपके पास उसका सार्टिफिकेट, अर्थात् शक्ति, स्फूर्ति उत्साह व कार्य्य-क्षमता अवश्य होगी । साठ वर्ष का मनुष्य भी युवा जैसी शक्ति रख सकता है, यदि उसने अपना नाश १८-२० वर्ष की आयु में नहीं किया । 'साठा सो पाठा' प्रसिद्ध है, केवल ब्रह्मचर्य्य पालन की आवश्यकता है ।

सर आईज़क न्यूटन और हर्बर्ट स्पैन्सर जैसे संसार के कल्याण-कारी व्यक्तियों ने भी अपने जीवनों से यह सिद्ध कर दिया है कि ब्रह्मचर्य्य से बड़ी आयु में भी मस्तिष्क की कार्य्य-शीलता बनी रहती है, शक्ति व सहिष्णुता में कोई कमी नहीं आती । इसी प्रकार हम अपने घरों में देखते रहते हैं कि पुराने फैशन की विधवा स्त्रियों की आयु लम्बी होती है। उन के दीर्घ जीवन का रहस्य उनके ब्रह्मचर्य्य व्रत, उपवास

व सात्विक जीवन व्यतीत करना है, उनमें इतना बल होता था कि वह परिवार का सारा काम स्वयं कर लेती थीं, इन बातों के अभाव से ही उनमें कमियां आती जा रही हैं।

हे भगवन् ! ब्रह्मचर्य्य के इतने लाभ हैं और फिर यह हमारी तन्दुरुस्ती का बीमा है, डाक्टर है, वैद्य है, तो फिर क्यों न ऐसे महाव्रत का पालन कर अभी से अपना जीवन सुधारने लग जांय, जिससे कि हमारा भविष्य-जीवन उज्ज्वल बने और हम बुढ़ापे में भी ऐसे सतर्क होकर कार्य्य करें कि सब को आश्चर्य हो।

वीर्य्य नाश के कारण

हमारे बहुत से कुमार्गी भाइयों ने वीर्य्य नाश के विविध ढंग बना रक्खे हैं, उनके विषय में लिखते हुए हमारी लेखनी कांपती है; परन्तु जनता की उससे जो भारी हानि हो रही है, उसे देखते हुए लिखना आवश्यक है। और तो और इस संसार में कई एक पढ़े लिखे व बहुत से मूर्ख व्यक्ति या चिकित्सक भी ऐसे हैं जो कि वीर्य्यनाश कराने में सहायक होते हैं। उन का कहना है कि पूर्ण मनुष्यत्व पाने के लिए उन्हें ऐसा करना चाहिए, परन्तु हम आगे 'क्या ब्रह्मचर्य्य से हानि सम्भावित है?' प्रकरण में सप्रमाण लिख रहे हैं कि वीर्य्यनाश उन के लिए घातक है और संयम द्वारा ही मनुष्यत्व का विकास सम्भावित है। यहां हम वीर्य्यनाश के तीन निम्न मुख्य कारणों पर ही विचार करेंगे।

हस्त मैथुन

हस्त मैथुन जैसी भयानक कुचाल आजकल और सब प्रकार के कृत्रिम मैथुनों से अधिक फैली हुई है। प्रायः कर बालक इसे बारह से पन्द्रह वर्ष की आयु में ही सीख लेते हैं। कई एक तो आठवें वर्ष के लगभग ही इस कुकृत्य से अपनी हिंसा स्वयं करना प्रारम्भ कर देते हैं। आज कल के माता पिता अपने बच्चों के निरीक्षण का बड़ा दावा करते हैं, परन्तु अपनी सन्तान को इस कुचालसे नहीं बचाते या बचाने का प्रयत्न ही नहीं करते।

डाक्टर कोवेन एम० डी० लिखते हैं कि माता पिता के

कुसमय में किये कुकृत्यों का प्रभाव बुरा पड़ता है । जिसके फलस्वरूप बच्चे पांच वर्ष की आयु में ही हस्तमैथुन आदि द्वारा अपना नाश करने लगते हैं।

प्रायः यह आदत किसी दूसरे के सिखाने से ही आया करती है, चाहे वह सिखाने वाला कोई नौकर दाई या अन्य बालक ही हो। कई बार स्वयं माताएं या घर की वृद्धायें ही बच्चे की गुह्येन्द्रिय को थापने या मसलने लगती हैं जिससे कि बच्चा उधर ध्यान होजाने से रोवे या चिल्लाए नहीं। बस यहां से ही उस अबोध बालक के सर्वनाश का प्रारम्भ हो जाता है। उसे उस समय बुरा मार्ग तो मिल गया परन्तु बचाने या समझाने वाला कोई नहीं होता। इसके अतिरिक्त कई बार मूत्रेन्द्रिय के न धोने से वहां खुजली सी होने लगती है, और ज्यों ज्यों खुजली कीजाय, आनन्द आता प्रतीत होता है; यहां तक कि अन्त में वीर्य्य नाश हो जाता है; और इसी प्रकार फिर आदत बन जाती है। तंग कपड़े पहिरने से भी उत्तेजना होने पर रगड़ से वीर्य्यनाश हो जाया करता है। नरम बिछौने का व्यवहार, जान बूझ कर या अनजाने में इन्द्रिय मर्दन, पेशाब आने पर न करने से या बहुधा बेंत आदि की मार की पीड़ा को दूर करने के लिये भी बालकों को इस कुचाल को करते हुए देखा गया है। जहां कि उनकी वह आयु विकसित होने की होती है वहां वह इस कालोपम कुचालसेआक्रान्त हो, शक्तियों के विकास की रुकावट को प्राप्त करते हैं। उन्हें पूर्ण या आंशिक नपुंसकता धर दबाती है। इन्द्रिय में, उसके अन्दर पूर्णता प्राप्त होने से पहिले ही उस के व्यवहार के कारण

उस में नसों का उभरना व पुरुषत्व की कमी आ जाती है। वह टेढ़ी, छोटी, एक ओर से पतली और दूसरी ओर से मोटी हो जाती है। इतने विकारों के हो जाने पर भी इस कुचाल का शिकार इसे छोड़ने नहीं पाता। जिस प्रकार एक कुत्ता सूखी हड्डी को चबाता है और अपने ही मुंह से निकले खून को उस हड्डी से निकला समझ कर चबाता चला जाता है, ठीक उसी प्रकार की दशा इस कुचाल से घिरे हुए की भी होती है।

एक अनुभवी पाश्चात्य विद्वान् का कथन है कि इस समय संसार का एक भी स्कूल ऐसा नहीं है, जहां कि हस्त-मैथुन न होता हो। यह वास्तव में सत्य है कि सभी संस्थाओं में ऐसे व्यक्ति पाये जाते हैं जो कि यह दुष्कर्म्म करते हों; वह न केवल करते ही हैं, किन्तु दूसरों को सिखाते भी है। इस समय सम्भव हो सकता है कि एक हज़ार व्यक्तियों में से कोई एक यह कह दे कि मैंने ऐसा कुकर्म नहीं किया, परन्तु यदि छान-बीन की जाय तो वह भी झूठा निकलेगा।

जितने भी कृत्रिम मैथुन हैं उन में वीर्य्य नाश को देखते हुए, यह सब से बुरा है। कारण यह कि एक तो बिना दूसरे की अपेक्षा के किये जा सकने से, इसको बालक स्वयंमेव जब भी एकान्त मिले, तब ही एक एक दिन में कई कई बार कर डालते हैं। दूसरे इस में वीर्य्य काफ़ी परिणाम में सारे शरीर को धक्का सा देकर निकलता है जिसके परिणाम स्वरूप ऐसी क्रिया के तत्क्षण बाद ही हृदय धड़कने लगता है,आंखों के आगे अन्धेरा छा जाता है। मस्तिष्क खाली मालूम होने लगता है और हाथ बिलकुल शिथिल हो जाते हैं। कई एक को

मस्तिष्क की कमज़ोरी यहां तक हो जाती है कि उन्हें पागलखाना तक जाना या भेजना पड़ता है। और बहुत सों को मृगी (अपस्मार) आदि रोग धर दबाते हैं। मूल शक्ति-धातु (वीर्य्य) के नाश का जो भी दण्ड मिले, सो थोड़ा है।

डाक्टर लैलमण्ड साहिब ने ऐसे बहुत से रोगियों के विषय में लिखा है, जिन्हें कि चौबीस घण्टे में दस पन्द्रह बीस बार तक, इस कुकृत्य के करने की आदत थी। तीन से सात बार तक तो हमारे यहां भी बहुत से रोगियों ने ऐसा करने की बात कही है। ऐसा करने वाले न केवल अपनी मृत्यु को ही बड़ी शीघ्रता से बुलाते हैं किन्तु जितने भी मूत्रेन्द्रिय सम्बन्धी रोग इस संसार में हैं उन्हें आने का निमन्त्रण देते हैं। मूत्रेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों का प्रसार यदि कृत्रिम मैथुन बन्द हो जाय तो इतना अधिक दिखाई न दे।

इस कुचाल में फंसने वाले बालक क्षणिक सुख प्रतीत होने के लोभ में अपने सारे भावी जीवन की बलि दिया करते हैं। यदि वह अपनी अवशिष्ट आयु रोते कलपते व्यतीत करना नहीं चाहते, तो उन्हें चाहिये कि इस कुचाल से कोसों दूर रहें।

पुंस्त्व मैथुन

पुंस्त्व मैथुन अर्थात् बालकों का परस्पर वीर्य्यनाश, पन्द्रह से अट्ठारह वर्ष की अवस्था में विशेष कर पाया जाता है। यह भी किसी नौकर, साथी या किसी नामधारी साधु संन्यासी की कुसंगति से ही बालक सीखते हैं ऐसे लोग सगे सम्बन्धियों के सामने परम हित दिखाते हैं। परन्तु साथ ही

ऐसी गुप्त शत्रुता करते हैं कि सारी आयु ही बिगड़ जाती है। कई एक अध्यापक भी ऐसे कुकर्मी निकल आते हैं कि वह अपने पुत्र-तुल्य शिष्यों का सर्वनाश करते नहीं सकुचाते। प्रत्येक माता पिता को चाहिये कि जब भी किसी नौकर सहाध्यायी, अध्यापक या किसी उपदेशक की नियुक्ति करें, तो सर्व प्रथम उसका आचार देखें या किसी अन्य प्रकार से उसकी परीक्षा करलें। सहसा विश्वास कर लेने से बहुधा कुछ समय में ही पता चलता है कि वह तो पापात्मा है। "आदमी बसे से और सोना कसे से" ही जान पड़ता है। शास्त्र में भी लिखा है—

अज्ञातकुलशीलस्य, वासो देयो न कस्यचित्।

अर्थात् जब तक किसी के आचार व कुल सम्बन्धी बातों का पता न लगा लिया जाय, तब तक किसी को भी रहने का स्थान न देना चाहिये। पुंस्त्व व हस्तमैथुन विद्यार्थियों या अल्पव्यस्कों तक ही सीमित हो सो नहीं, कालेज के विद्यार्थी छात्रावास, सिपाहियों व गोरों की बैठकें और कारागार (जेल) आदि में भी यह कुकर्म्म खूब प्रचलित है। कोई धर्म्म, कोई प्रांत इससे खाली नहीं है।

हमारे बहुत से पहिले लेखकों व सुधारकों ने "आत्मवत्सर्व भूतेषु" के अनुसार ही दूसरों को समझते रहने के कारण पुंस्त्व मैथुन का उल्लेख तक नहीं किया। कहीं कहीं ढूंढ़ने से ही एक दो श्लोक मिलते हैं। कारण कि यह कुकर्म्म म्लेच्छों से ही हम में आया है। इसी कारण सारे भारत में इस से सब से अधिक आक्रान्त पठानों के प्रान्त या लखनऊ आदि के निवासी ही मिलेंगे। मनु ने लिखा है:—

15917

मैथुनं तु समासेन पुंसि योषिति वा द्विजः ।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासा स्नानमाचरेत् ॥

अर्थात् जो कोई स्त्री या पुरुष के साथ गाड़ी में, जल में या दिन के समय मैथुन करे, उसे कपड़ों सहित स्नान करना चाहिये।

पशु मैथुन

पशु मैथुन के विषय में भी हम कुकर्म्मियों के अपने मुख से ही सुनते रहते हैं। पाप की कितनी पराकाष्ठा है कि ऐसे लोग मानव प्रकृति या जाति से भिन्न दीन-पशुओं से अपनी पाशविक वृत्ति को शान्त करते हैं। इनमें से बहुत से पापात्मा बकरी, गाय, कुतिया आदि पशुओं से मैथुन करते पकड़े जाते हैं। बहुत से टांगा चलाने वालों व अन्य बहुत से दूसरे लोगों ने बकरी आदि केवल इसी पाप की पूर्ति के लिये ही पाल रक्खी होती हैं। ऐसे दुराचारियों को लज्जा नहीं आती कि जहां वह बकरी या गाय का दूध पीकर उसे मातृत्व का स्थान देते हैं, वहां ही वह ऐसा कुकर्म्म कर अपना मुंह काला कर लेते हैं। "इससे उन्हें न केवल वह रोग, जिनका वर्णन हम अगले प्राकरणों में करेंगे" हो जाते हैं, किंतु आतशक सूज़ाक प्रभृति भयङ्कर रोग भी उन्हें अपना शिकार बनाये बिना नहीं छोड़ते। सुश्रुत में भी लिखा है:—

तिर्यग्योनावयोनौ च दुष्ट-योनौ तथैव च।
उपदंशस्तथावायोः कोपः शुक्रस्य च क्षयः॥

तिर्यक् योनि, अर्थात् गाय, भैंस बकरी आदि, अयोनि (पुंस्त्वमैथुन आदि) और दुष्ट योनि (वेश्या परस्त्री आदि)

में मैथुन करने से न केवल वीर्य्य का ही नाश होता है, अपितु उपदंश (आतशक) आदि भयानक रोग, तथा वायु के रोग हो जाते हैं। ऐसे रोग फिर मरते दम तक नरकोपम यातनाएं (कष्ट) देते रहते हैं। इस प्रकार से अपना नाश करने वाला विवाह के भी अयोग्य हो जाता है। उसे सांसारिक सुख प्राप्त नहीं होता। उसकी इन्द्रिय हाथ या दूसरे अप्राकृतिक मैथुनों की रगड़ से ऐसी बन चुकी होती है कि उसे किसी कोमल वस्तु के स्पर्श का पता ही नहीं चलता। इतने कष्ट पाने पर भी उनके दुःखों का अन्त नहीं होता। यदि कोई उन्हें ऐसा कुकर्म्म करते देख ले, तो अपमान के अतिरिक्त कई वर्ष जेलखाना भी भुगतना पड़ता है। भारत सरकार की धारा ३७७ के अनुसार उसे क्या क्या दण्ड मिल सकता है, यह हम वहीं से उद्धृत करते हैं—

Whoever voluntarily has carnal intercourse against the order of nature with any man; woman or animal, shall be punished with transportation for life, or with imprisonment of either description for a term which may extend to ten years, and shall also be liable to fine.

अर्थात् ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो कि किसी पुरुष, स्त्री या पशु से अप्राकृतिक मैथुन करे, उसे आजन्म काला पानी का दण्ड मिलेगा, या दस वर्ष तक का कारावास या जुरमाना दोनों किया जायगा।

जननेन्द्रिय कोई बुरी वस्तु नहीं, वह तो एक पवित्र व

नाज़ुक अङ्ग है, वह आंख से भी नाज़ुक है । उसके बार बार का, व अनुचित व्यवहार न केवल इसे खराब कर देगा, किन्तु इस प्रधान शक्ति के नाश होने के अनन्तर अन्य शारीरिक शक्तियों का भी नाश हो जायगा । और फिर संसार के सभी मनुष्य इसी जननेन्द्रिय से उत्पन्न होते हैं, अतः ऐसे पवित्र अङ्ग को हमें अपने मानसिक कुभाव के कारण विगाड़ न देना चाहिये । हम लोग कितने अविचारी हैं जो एक क्षणिक सुख के लिये बड़े परिश्रम से उत्पन्न की हुई, अमूल्य निधि के रूप में संचित अपनी जीवनी शक्ति (वीर्य्य) को पल भर में गवा देते हैं, और यह नहीं समझते कि फिर पूरा मूल्य चुकाने पर भी यह वापिस नहीं आयगी । कहा है:—

फिर पछताये क्या होत है, जब चिड़ियां चुग गई खेत ।

संसार में यदि कोई युवक अपने विपुल (बहुत से) धन का नाश करने लगे तो उसे सभी लोग धिक्कारने लगते हैं । परन्तु वही धिक्कारने वाले या उनकी सन्तान अपने शरीर के धन (वीर्य्य) का नाश करते देखे जाते हैं, और उन्हें कोई कुछ नहीं कहता । परन्तु सदाचार व पुरुषत्व शक्ति के बिना चाहे कोई लाखों पति हो, वह एक टूटे मनुष्य के समान है। जब एक व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक, या मस्तिष्क की शक्ति ही नहीं, तब भला वह क्या करेगा और क्या विचारेगा ।

आप सोचते होंगे कि कुश्ता कलई (बंग भस्म), शक्ति के चूर्ण व गोलियां खा कर अपनी खोई हुई शक्ति प्राप्त कर लेंगे। परन्तु इतना स्मरण रखना चाहिये कि यह सब सहायता करने वाले अवश्य हैं, परन्तु यह तभी सहायक होंगे जब कि आप

अपनी सहायता स्वयं ब्रह्मचर्य्य से करेंगे। एक सब से भयानक बात यह भी है कि यदि उपदंश या उष्णवात (आतशक या सूज़ाक) जैसे भयङ्कर रोगों में से एक भी हो गया तो आप का क्या होगा? आप स्वयं तो अपने किये का फल जितना चाहें, भोग लें, परन्तु अपनी भावी सन्तान को अपने पाप का भागी क्यों बनाते हैं, वह क्यों गल गल कर इन पैतृक सहज रोगों से सड़ें। यह रोग कैसे भयङ्कर हैं, यह आप इस पुस्तक के दूसरे भाग में पढ़ेंगे।

आश्चर्य्य की बात तो यह है कि हम अनुभव करते हैं कि हम कमज़ोर हो रहे हैं, हमारा स्वास्थ्य गिर रहा है, स्मरण शक्ति नहीं रही, और हम और किसी को तो क्या अपने आप को सम्भालने के योग्य भी नहीं रहे। इतना सब होने पर भी हमारा प्रयत्न सच्चा नहीं होता, यदि हम पूर्णतया यह समझ लें, मन में बैठा लें कि ब्रह्मचर्य्य के बिना तो जीवन, जीवन ही नहीं, केवल पशु के समान जीवन की घड़ियां बिताना मात्र है, और इसी से दुनियां भर के रोग लगते हैं, या अन्य तपेदिक, बुखार, खांसी, पीलिया, दमा, कमज़ोरी, या अन्य वायु प्रभृति के रोग इसी के प्रसाद स्वरूप मिलते हैं, तो हमारा निश्चय, अवश्य अत्यन्त दृढ़ हो जायगा। वैद्यक में लिखा है कि वीर्य्य नाश से निम्नलिखित रोग हो जाया करते हैं—

शूलकास-क्षय-श्वास-कार्श्य-पाण्डवामय ज्वराः।
अति व्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः॥

———

वीर्य्य नाश से हानियां

Sickness is the consequence of sin. If there had been no sin, there would be no sickness, and if sin were banished from the world, there would be no more sickness. It must be distinctly recognised that all status, selfishness, pride, hatred, envy, incharitableness, anger, passion have a disadvantageous infleunce on the body.

History of the world.

रोग पाप का परिणाम है । संसार में यदि पाप न होता तो रोग भी न होते । अब भी यदि किसी प्रकार से पाप का पूर्णनाश कर दिया जाय, तो रोग हो ही नहीं सकते । यह हमें भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि आत्माभिमान, स्वार्थ अभिमान, घृणा, ईर्षा, अनुदारता, क्रोध और काम हमारे शरीर पर बुरा प्रभाव डालते हैं ।

वीर्य्यनाश से कौनसा ऐसा रोग या शारीरिक कमज़ोरी है, जो नहीं होती । इस से मन चञ्चल हो जाता है, काम काज में दिल नहीं लगता और यहां तक कि मृत्यु तक हो जाती है । पश्चिम के एक विद्वान् डाक्टर लिखते हैं कि जितना भी हम मूत्रेन्द्रिय का स्पर्श या व्यवहार अधिक करेंगे, उतनी ही उस में स्पर्श शक्ति बढ़ेगी और हमारा पतन होगा ।

वीर्य्य शरीर में राजा के सदृश सभी धातुओं व अङ्ग प्रत्यङ्ग का पालन करता है । उसे निकाल बाहिर करने से शरीर

में अराजकता आ जाती है। ऐसा मौका पाकर बाहरी वस्तुएं (रोग आदि) शरीर में घुस आती हैं। वीर्य्यनाश करने वाले को चाहे सभी रोग जैसे, बालों का झड़ना, आवाज़ बैठना, मांस पेशियों का छोटा व ढीला होना आदि हो जाते हैं, परन्तु हम यहां पर केवल सब से भयानक चार रोगों का ही वर्णन करते हैं। कई एक सज्जन पूछा करते हैं कि वीर्य्यनाश से क्यों कर हानि होती है? उन्हें निम्न उदाहरण से उत्तर प्राप्त हो जायगा।

एक बार एक बड़ा सुदृढ़ भवन बनाने के लिये एक ठेकेदार को बहुत सा सीमेण्ट दिया गया। गृह स्वामी ने साथ ही यह आज्ञा दे दी कि वह सीमेण्ट का खूब व्यवहार करे, जिस से वह भवन चिरकाल तक अटल बना रहे और उस में कोई भी खराबी न आवे। ठेकेदार ने उस समय तो हां कर दी, परन्तु पीछे उसके मन में पाप समा गया, और उस ने मन ही मन कहा कि मैं बहुत सी रेत डाल कर इस भवन का निर्म्माण क्यों न कर डालूं। जो सीमेण्ट बचेगा उसका व्यवहार अन्यत्र कर पैसा कमा लूंगा। उस ने इसी निश्चय के अनुसार वह भवन तैय्यार किया। परन्तु सीमेण्ट की कमी के कारण वह कच्चा था, और कुछ दिनों में ही गिर गया, जहां कि उसे सैंकड़ों वर्षों तक खड़ा रहना चाहिये था।

उसी प्रकार हमारे शरीर में भी यदि हम वीर्य्य-रूपी सीमेण्ट खर्च होने न देंगे तो हमारे शरीररूपी भवन का हाल क्या होगा, यह हमें लिखने की आवश्यकता नहीं। इस में थोड़ी सी कमी हमारी कमी रह जायगी, और पूर्णता न होने के कारण हमारी देह मज़बूत न होगी; वह छोटे से रोग के धक्के से भी

गिर अर्थात् पञ्चत्व को प्राप्त हो जायगी।

प्रिय पाठकगण व पाठिकाओ! अब आप स्वयं ही सोच लें कि आप कौन सा गृह (शरीर) अपने लिये व अपनी सन्तान के लिये बनाना चाहते हैं। हमें वीर्य्य-नाश के कारण प्रत्यक्ष में चाहे अपने अन्दर या अपने बालकों में कोई कमी न दिखाई देती हो, परन्तु जब हम अपनी तुलना अपने पूर्वजों से करने लगें, तो हमें ज्ञात होगा कि अन्तर कितना हो गया है। उस समय इतना विज्ञान न होने पर भी, उन्हें कितने रोग सहसा धर दबाते थे और हमें कितने आ घेरते हैं।

जापान में आजकल एक नई बात प्रचलित है, वहां रोग के न होने का उत्तरदायित्व वैद्य पर डाला जाता है। उस के चेतावनी देने पर भी कि ऐसा न करो, करने से यदि रोग हो जाय तो दूसरी बात है। साधारणतः उसे उस की फीस तभी तक मिलती रहती है जब तक कि उस के रोगी स्वस्थ हैं, रोगी होने पर नहीं, वास्तव में ऐसा ही होना चाहिये।

क्षय

कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु।
अति व्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तराः॥
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः।
व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः॥
पाण्डुदेहो यथा पूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः॥

'ट्रिब्यून' या किसी अन्य समाचार पत्र में स्वास्थ्य विषयक

रिपोर्ट पढ़ते समय तपेदिक का नाम अवश्य पढ़ना पड़ता है कि इस बार इतने मनुष्यों की मृत्यु इस भयानक रोग से हुई यह संख्या हर बार अधिक ही होती दीखती है। दैनिक रोगी निरीक्षण (प्रैक्टिस) में भी ऐसे रोगियों की बहुतायत पाई जाती है। इस रोग के प्रायः असाध्य या कष्ट-साध्य होते हुए भी बहुत से लोग इसके विशेष चिकित्सक बने हुए हैं, कारण कि इस रोग का रोगी महीनों, वर्षों गल गल कर मरता है।

इस रोग की भयानकता व फैलने का पता पहाड़ की सैर करते समय विशेष कर चलता है। चाहे ऐसे रोगियों के लिये भुवाली, धर्म्मपुर आदि में अच्छे अच्छे स्वास्थ्य-सदन (सैनीटेरियम) बने हैं; परन्तु तो भी मंसूरी, अलमोड़ा, सोलन आदि रम्य पर्वतों में कदाचित् ही कोई ऐसा घर होगा, जहां कि ऐसा रोगी न रह चुका हो। परिणाम क्या होता है कि बहुत से कमजोर तबीयत वाले सज्जन, जो पहाड़ पर स्वास्थ्य सुधारने के लिए जाते हैं वहां सुधारने के बदले उलटा इस गन्दे रोग को ही समेट लाते हैं। यदि यह एक को लेकर ही छोड़ दे, तो भी ठीक है, परन्तु यह ठहरा राज रोग। जब तक अपना पूरा भोग न लगा ले, जाता नहीं। होता क्या है एक घर में से ही कई कई व्यक्तियों को इस रोग की भीषण यातनाएं सहते हुए काल के गाल में जाना पड़ता है। किसी ने ठीक कहा है:—

consumption not only consumes the patient, but his means, his relatives & their means.

अर्थात् क्षय रोग [illegible] नाश करता हो, सो

391.2 G 87 B
634[illegible]

नहीं, वह उस के आय के तरीके, उसके सम्बन्धियों और उनके आयके प्रकारों का भी नाश कर देता है।

यह क्यों होता है, इसके सम्बन्ध में वैद्यक शास्त्र के दो श्लोक ऊपर लिख आये हैं, जिनका तात्पर्य्य यह है:—जो मनुष्य अपने अपने वीर्य्य का किसी प्रकार से भी बहुत अधिक नाश कर चुके हैं, उनके वीर्य्यनाश हो चुकने पर बाकी छे धातु (रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा) भी क्षीण हो जाती हैं। शरीर सूख जाता है व अन्य धातुओं की कमी के कारण उसका शरीर पीला पड़ जाता है, बुखार आने लगता है, हाथ पैर में जलन होती है, व खांसी आदि सभी छोटी मोटी बीमारियां उसे आ घेरती हैं। वीर्य्य के नाश से होने वाले रोगों में से यह प्रमुख है।

स्वप्न-दोष

पन्द्रह–सोलह वर्ष की आयु के बाद महीने में एक बार रात्रि को सोते हुए अनजाने में वीर्य्य का बह निकलना कुछ हद तक स्वाभाविक कहा जा सकता है। यह स्वाभाविक-तया हुआ है, इस की एक सहल पहचान है कि अगले दिन किसी प्रकार की दुर्बलता अनुभव न हो; चित्त काम करने को चाहे व शान्त बना रहे, अन्यथा नहीं। ऐसे स्वप्नदोष के होने के अनन्तर भी विचार करना चाहिये कि कहीं इसका कारण भोजन की विषमता, रहन सहन या खान पान के कारण उत्पन्न हुई उत्तेजना तो नहीं, यदि आहार बिहार सात्विक हो और विचार शुद्ध हों तो अमेरिका के प्रसिद्ध

दार्शनिक एण्ड्रूज़ जैकसन डेविस (Andrews Jackson Davis) के मतानुसार उसका वीर्य्य मस्तिष्क के स्नायुओं में परिवर्तन हो जाता है । और इसे प्रायः सभी पाश्चात्य विद्वान् मानते हैं ।

स्वयं स्वप्नदोष होने पर कई बार कुछ आनन्द सा प्रतीत हुआ करता है। परन्तु वैसा ही आनन्द फिर प्राप्त हो, इस आशा से मूत्रेन्द्रिय का रगड़ना या हिलाना पाप है । युवावस्था की ओर अग्रसर कन्याओं, युवती विधवाओं व नवयुवती स्त्रियों में भी एक गाढ़ी सी वस्तु थोड़ी मात्रा में गर्भाशय के द्वार से गिरा करती है । इसका कभी कभी गिरना उतना हानिकारक नहीं, जितना लड़कों के लिये है । यदि यही प्रदर के रूप में परिवर्तित हो जाय, तो हानि पहुंचाता है, परन्तु इस साधारण आगमन का बहुधा उन्हें पता ही नहीं चलता। प्रदर के विषय में हम 'स्त्रीरोग' प्रकरण में लिख रहे हैं।

किसी एक बात को अपनी आदत बना लेना बुरा है। आदत बना लेने पर कई बार हम इसे अनजान में भी कर बैठते हैं । देखा जाता है कि कई एक व्यक्तियों की आदत कुछ न कुछ तोड़ते रहने या चबाते रहने की होती है। वह कभी कागज़ तोड़ कर चबा रहे हैं तो कभी घास का तिनका लेकर ही कुरेद रहे हैं। यदि कोई उनका ध्यान उस ओर आकर्षित करे तो वह आश्चर्यान्वित हो जाते हैं । कारण कि वह जान बूझ कर ऐसा नहीं कर रहे थे, किन्तु उन की आदत ही ऐसी हो चुकी है। इसी प्रकार वीर्य्य के विषय में

भी समझना चाहिये। पहिले तो हम कुसङ्ग या झूठे राजस आनन्द के कारण हस्तमैथुन आदि द्वारा शरीर की पवित्र व जीवनाधार वस्तु को निकालते रहते हैं, और उसके दुष्परिणाम को नहीं सोचते। फल यह होता है कि फिर अनिच्छा से भी विशेष कर निद्रित अवस्था में या जागृत अवस्था में ही वह स्वयं बह निकलता है। कई प्रयत्नों से भी उस की यह आदत जल्दी नहीं छूटती। आयुर्वेद में स्वप्न के विषय में लिखा है:—

दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रार्थितः कल्पितस्तथा।
भाविको दोषजश्चेति स्वप्नः सप्तविधो मतः॥

किसी देखी, सुनी, अनुभव की, प्रार्थित, कल्पित या भावना से स्मृतिपथ पर लाई हुई वस्तु का हमें स्वप्न में ध्यान आ सकता है। इस के अतिरिक्त हमारे किसी दोष (वात-पित्त-कफ) की कमी या अधिकता से भी हमें स्वप्न आ सकता है।

प्रायः स्वप्नदोष वीर्य्यनाश कर चुकने, कुविचारी, गन्दी पुस्तकों के पढ़ने वालों, प्रेममय सिनेमा या अन्य ऐसे ही दृश्य देखने वालों को अधिकतर होता है। उन्हें निद्रित अवस्था में भी वही विचार, वही दृश्य, वही प्रेम के चित्र दीखने लगते हैं, और वह स्वयं ही वहां नायक या नायिका बन बैठते हैं। इतने में ही शरीर के अधोभाग में कुछ गीलापन जान पड़ने से नींद खुल जाती है। उन्हें पश्चाताप के कुएं में गिरना पड़ता है कि उनकी कई चालीस दिनों की कमाई उन्हीं की गलती के कारण एक क्षण में व्यर्थ चली गई। धीरे धीरे यह आदत इतनी बढ़ती है कि फिर प्रातःकाल ही पता चलता है कि रात्रि को

स्वप्नदोष हुआ था। अवस्था यहां तक बिगड़ती है कि एक एक रात्रि में ही दो दो या तीन तीन बार स्वप्न में वीर्य्य बहने लगता है।

जिन नवयुवकों को एक मास में एक बार से अधिक स्वप्नदोष हो, उन्हें सावधान हो अपनी चिकित्सा करानी चाहिए। एक मास में एक बार स्वप्नदोष होना भी यह बताता है कि हमारा मन जितना शुद्ध होना चाहिए उतना नहीं है या हमारे शरीर में जितना भी वीर्य्य बनता है, उस का बहुत सा भाग शरीर के पोषण में व्यय न हो कर यों ही नष्ट हो रहा है। विदेशीय डाक्टरों की सम्मति है कि सहशिक्षा (co-education) भी स्वप्नदोष बढ़ाने में सहायक होती है। भारत के कालेज व स्कूलों में आजकल इस का प्रचार बढ़ रहा है, परन्तु योरोप व अमेरिका में इस को दूर करने के लिए लड़के व लड़कियों के प्राइवेट स्कूल अलग अलग खोले जा रहे हैं।

प्रमेह

किसी के स्मरण या मस्तिष्क में नाना प्रकार के विषय भोग के चिन्तन करते रहने से भी प्रायः प्रमेह हो जाता है। इस में वीर्य्य मूत्र (पेशाब) के साथ मिला हुआ, मूत्र के पहिले या पीछे, या तार के समान निकलता है। किसी रोगी का मूत्र पानी, किसी का गन्ने के रस, शराब या पीठी आदि के समान होता है। वीर्य्य मिश्रित, रेत या फास्फेट मिला हुआ, जाले जाले वाला, नीले, पीले, लाल खून की तरह का या चर्बी (एल-ब्यूमैन) युक्त और शहद के समान मूत्र भी साधारणतः होता

देखा जाता है। केवल इतना ही नहीं, ऐसे रोगी के हाथ पैरों में जलन होने लगती है, दांत साफ करने पर भी जल्दी मैले हो जाते हैं। शरीर के कई भाग, विशेषकर मुख व नाक अपने आप बिना किसी चिकनी वस्तु के व्यवहार के ही चिकने हो जाते हैं; प्यास बार बार लगने लगती है, आदि। ऐसे रोगियों को उन अवस्थाओं में दूध, दही, घी गुड़ आदि तक का सेवन भी ठीक नहीं रहता; और इन्हें प्रायश्चित रूप में सभी कुछ थोड़े समय के लिये छोड़ देना पड़ता है। ऐसे रोगियों की चिकित्सा में भी समय लगता है, और जब तक स्मरण व मस्तिष्क के विचारों की शुद्धि नहीं होती, पूरा लाभ नहीं होता।

बहुत से लोग स्वप्नदोष, नपुंसकता, प्रमेह आदि रोगों का इलाज एक दो खुराक या तीन चार दिन में करने का दावा किया करते हैं; या ऐसा विज्ञापन देते हैं। ऐसे महानुभाव न केवल झूठे, किन्तु पैसा बटोरने वाले होते हैं। यदि किसी की कोई औषध (जिस में कई एक हानिकारक विषैली वस्तुएं होती हैं) क्षणिक लाभ कर भी गई, तो उसका परिणाम बहुत भयङ्कर होता है। हमने सारे भारत का भ्रमण, विदेश जाने से पहिले विद्यार्थी-भाव से किया, परन्तु किसी भी योग्य वैद्य के पास ऐसी चमत्कारक औषध न देखी, जो कि छू-मन्तर से लाभ कर सकती हो।

नपुंसकता (नामर्दी)

वीर्य्य सम्बन्धी सभी रोगों व कमज़ोरियों का अन्तिम परिणाम नपुंसकता होती है। नव्वे प्रतिशत से भी अधिक व्यक्ति नपुंसकता का ठीक अर्थ नहीं जानते। प्रायः लोग उसे ही

नपुंसक (नामर्द) समझते हैं जो जन्म से ही नपुंसक हो या जिसमें वीर्य्य नाम को भी न हो, परन्तु यह रोग ऐसे मनुष्यों को भी हो सकता है, जो दो चार वर्ष पूर्व ही बिलकुल ठीक थे और अति मैथुन या अन्य कृत्रिम मैथुनों से अपने आप अपने पैरों कुल्हाड़ा मार कर नपुंसक हो गये। प्रायः ऐसे व्यक्तियों में वीर्य्य, चाहे वह पानी की तरह पतला ही क्यों न हो, होता है, परन्तु वह किसी काम के योग्य नहीं रहते। उन्हें इन्द्रिय में किसी प्रकार की उत्तेजना नहीं होती। और इसी अभाव के कारण उन्हें कभी भी अपना विवाह न कराना चाहिये। यदि किसी तरह कराना पड़ भी जाय, तो किसी अनुभवी चिकित्सक से, जिसने ऐसे हज़ारों रोगियों को स्वस्थ किया हो या नेक सलाह दी हो, अवश्य एक बार पूछ लें। यदि वह सलाह दे और ठीक होने की आशा दिलाये, तो ठीक होने पर ही विवाह करना चाहिये। जन्म से नपुंसक, या जिन व्यक्तियों में चिरकाल से उत्तेजना नहीं होती, वह कितनी ही औषधें क्यों न खा लें, ठीक नहीं होते। ऐसे व्यक्तियों को अनपढ़ों, चलते फिरते जोगियों व शर्तिया इलाज करने वालों से बच कर रहना चाहिये। ऐसे लोग अशुद्ध संखिया आदि की ठीक न बनी हुई औषध देकर कोई और रोग भी दे जाते हैं।

वीर्य्य शोषी (वीर्य्य की कमी वाले) या प्रमेह आदि से रुग्ण (बीमार) नवयुवकों को चाहिए, कि भूल कर भी रुग्ण अवस्था में विवाह न करें। उनका अपना जीवन तो दुःख-मय है ही, परन्तु अब दूसरे के जीवन को भी वैसा ही बनाने का पाप न लें। पूर्ण स्वस्थ होने पर वह विवाह कर सकते हैं।

इस से पहिले किया हुआ विवाह ऐसे रोगों के बढ़ाने में सहायक होगा, तथा शीघ्र ही मृत्यु की ओर ले जायगा। डा० ड्यू बौय साहिब का भी कहना है, "वे लोग नपुंसकता के अधिक शिकार होते हैं, जो विषय भोग के लिए अपनी इन्द्रियों की लगाम बिलकुल ढीली किये रहते हैं।"

सिर दर्द, स्मृति-हीनता, आंखों में कमज़ोरी, आलस्य, श्वास आदि रोग भी इसी के फलस्वरूप होते हैं। जहां आप में काम करने की शक्ति, उत्साह, वीरता आदि गुण होने चाहिए थे वहां स्वभाव चिड़चिड़ा, एकान्त प्रिय और डरपोक हो जाता है। इतने रोग हो कर ही यदि छुटकारा हो जाता, तो भी ठीक था, परन्तु घृणित गुह्य रोग (सुज़ाक व आतशक) आ घेरते हैं। जिनके कारण गल गल कर मरना पड़ता है। उनका विशेष विवरण हम इस पुस्तक के दूसरे भाग में देंगे। परन्तु गुह्य रोगों की गणना के आधार पर यह लिखना बुरा न होगा कि तेईस वर्ष की आयु के पहिले ही नव्वे प्रतिशत से भी अधिक युवा इन रोगों से आक्रान्त हो जाते हैं। जब कि प्राचीन व अर्वाचीन, वैज्ञानिक या अवैज्ञानिक सभी मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं कि पच्चीस वर्ष से पूर्व मनुष्य में पूर्णता नहीं आती। फिर न जाने क्यों इस पूर्णता की प्राप्ति से पहिले ही इतने लोग ऐसे रोगों के शिकार हो जाते हैं, जो कि वीर्य्यनाश के बिना नहीं होते।

———

बालिकाएं व ब्रह्मचर्य्य

अपने इतिहास की ओर दृष्टि डालने से हम पता चलता है कि भारतीय नारियां ब्रह्मचारिणियां व शिक्षिता होती थीं, लीलावती, भारती, सुकन्या, गार्गी आदि स्त्रियां इसका उदाहरण हैं। वेद में भी लिखा है—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अथर्व॥

कन्या पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का पालन करने के अनन्तर अपने योग्य पति को वरे। धर्म्म-पुस्तकों में भी लिखा देखा है कि गृहस्थरूपी रथ की एक पहिये से गति नहीं हो सकती। उस के लिए दोनों पहिये मज़बूत होने चाहिये। यदि स्त्री या पुरुष में से एक तो पूर्ण ब्रह्मचर्य्य पालन करे और दूसरा न करे, तो रथ के दोनों पहिये एक जैसे न हुए। ऐसा रथ या तो ठीक न चल सकेगा या मार्ग में ही टूट जायगा। अतः यह स्वयंमेव सिद्ध हो गया कि स्त्री को भी ब्रह्मचर्य्य व विद्या आदि से सुसज्जित होकर ही गृहस्थ में प्रवेश करना चाहिए। वह कोई न कोई ऐसी विद्या अवश्य जानती हो, जिससे कि किसी आपत्तिकाल में वह स्वयं कमा, खा सके। स्त्रियों के छोटी आयु में माता बनने और उन में पर्दा आदि होने के कारण ही कलकत्ता (बंगाल) में जहां एक पुरुष को तपेदिक होता है, वहां तीन स्त्रियां इस रोग का शिकार बनती हैं।

स्त्रियों के लिए ब्रह्मचर्य्य का काल साधारणतः सोलह वर्ष का माना गया है, परन्तु यह बढ़ाया जा सकता है। डाक्टर कौवेन साहिब का मत है कि स्त्री के सभी अङ्ग चौबीस वर्ष

तक पूर्णता को प्राप्त नहीं होते। अतः उन्हें इस समय तक ब्रह्मचारिणी रहना चाहिए। परन्तु भारतीय स्त्रियों के लिए सुश्रुत आदि आयुर्वेदज्ञों का मत ही अधिक मान्य है। उन के अनुसार स्त्रियों में पूर्णता सोलह वर्ष में ही आ जाती है। इस काल को और नियम पूर्वक बढ़ाना लाभकारी हो सकता है।

हमें यह देख कर प्रसन्नता होती है कि अब लोगों का विचार स्त्री-शिक्षा, व कन्याओं का विवाह जल्दी न करने के पक्ष में हो रहा है। इस में कोई सन्देह नहीं कि यह उन्नति का लक्षण है; परन्तु बहुत से स्थानों में कन्या के इतनी देर ब्रह्मचर्य्य पालन के अनन्तर भी उसका विवाह उपयुक्त वर के साथ नहीं होता। प्रायः वर उसकी आयु के लगभग या बहुधा छोटा भी होता है। हम इस पर विस्तार पूर्वक विचार अगले भाग में करेंगे। यहां इतना लिखना ही पर्य्याप्त है, कि ऐसा करना उचित नहीं।

आज कल हम इन कन्याओं को किसी प्रकार की भी सदाचार या धार्म्मिक शिक्षा नहीं देते। इनको बिलकुल सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए, परन्तु होता उलटा है; हम इन के लिए फैशन या सांसारिक उपभोग की प्रत्येक सामग्री उपस्थित कर देते हैं। इतने फैशन व उपभोग की सामग्रियां, रात दिन गोल गप्पे, तेल के तले पकौड़े, खट्टे व मसाले वाले छोले कचालू आदि खाते हुए भी वह ब्रह्मचर्य्य का पालन पूर्णतया करें, यह कैसे सम्भव हो सकता है। यह सजावट उन के हृदय में चाहे कोई अपवित्र भाव न लावे, पर देखना यह है कि इससे औरों के हृदय में कुविचार तो नहीं उठता।

लड़कियों व लड़कों में यौवन के चिन्ह परस्पर बिलकुल भिन्न होते हैं। थोड़े से आवश्यक परिवर्तनों को छोड़ कर, उन दोनों की शरीर-रचना प्रायः एक सी ही है। पांच छे वर्ष की कन्या में यदि ब्रह्मचर्य्य पालन के भाव भरे जांय, उसे आदर्श-कथा आदि सुनाई जांय, तो बहुत लाभ होने की सम्भावना है। हमारी माताएं व बहिनें, छोटी बालिकाओं से वस्त्र आदि बदलते या स्नान करते समय कोई पर्दा नहीं किया करतीं। परन्तु उसी बालिका के साधारण ज्ञान की बुद्धि से स्त्री-शरीर सम्बन्धी कोई प्रश्न पूछने पर "छिः ! गन्दी बातें नहीं किया करते" कह कर झिड़क देती हैं, या मासिक आदि की बात को बीमारी कह कर टाल देती हैं। उस भोली लड़की को क्या पता कि कौन सी बात अच्छी और कौन सी बुरी है। उसकी यह इच्छा दबती नहीं, वह यही बात किसी नौकर, नौकरानी या माता की अनुपस्थिति में किसी और स्त्री से पूछा करती है। उस समय उन्हें कुछ और ही समझाया जाता है, जिसका परिणाम उन के भावी जीवन पर बुरा होता है।

कहते हैं कि "कन्याएं दूज के चान्द के समान बढ़ती हैं"। इस का कारण और कुछ नहीं, केवल उन में बढ़ने के चिन्ह पहिले पाया जाना है। मासिक होना, प्रकृति की ओर से उन में स्त्रीत्व का द्योतक है। इस समय के बाद उनमें और भी बहुत से परिवर्तन आरम्भ हो जाते हैं। काम की भावना भी जाग सकती है, अतः पूर्ण संयम की आवश्यकता होती है।

स्वामी दयानन्द पांच पांच वर्ष के बालक बालिकाओं को भी परस्पर मिलने से बन्द कर गये हैं। जब तक बालिकाएं ब्रह्मचारिणी रहें, तब तक विशेष कर, और वैसे भी उन्हें अष्ट मैथुनों से (विवरण आगे देखें) बचना चाहिये। उन्हें भी किसी पुरुष का काम-भाव से स्मरण, दर्शन, स्पर्श, एकान्त में वार्तालाप या वैसे बैठना, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान, या कोई ऐसी बात जो कि उन्हें अपने व्रत से गिरा दे, न करनी चाहिए। परन्तु आज कल प्रत्येक सभा सोसाइटी में बालिकाओं व स्त्रियों का युवाओं से बातचीत करना बुरा नहीं माना जाता, किन्तु यह सभ्यता का एक अङ्ग होता जा रहा है। यदि यह यहां तक ही सीमित रह जाय, तो भी कदाचित् क्षम्य हो; पर वहां बहुत कर ऐसे हंसी मज़ाक होने लगते हैं, जो एक ब्रह्मचारिणी के उपयुक्त नहीं होते। इसी प्रकार सहशिक्षा (co-education) के पक्षपाती समझते हैं कि बालक बालिकाओं के इकट्ठे रहने से उन में विषय के भाव नहीं आते। पर अब जर्मनी व योरोपीय अन्य देशों में भी लोग अपनी गलती अनुभव करने लग गये हैं, और उस का विरोध प्रारम्भ है।

बालिकाएं व स्त्रियां भी हस्तमैथुन आदि पापों में फंसी होती हैं। वह भी क्षणिक आनन्द की प्राप्ति के लिए अपना सर्वनाश करती पाई जाती हैं। हम सभी में यह धारणा होती है कि स्त्रियें ऐसा कोई कर्म्म नहीं करतीं, जिस से उनकी शारीरिक शक्ति का ह्रास होता हो। केवल इतना ही नहीं, इस कुटेव से स्त्रियों व लड़कियों की बहुत हानि होती है। आजकल स्त्रियों व लड़कियों में प्रायः सिर दर्द, कमर दर्द, हाथ पैर का टूटना या

जलन आदि के होने का यह भी एक कारण है। प्रदर, हिस्टीरिया, कलेजा धड़कना या डूबना, प्रभृति रोग भी उन्हें बहुतायत से घर दबाते हैं। यहां तक कि तपेदिक जैसे भयङ्कर रोग भी नहीं छोड़ते। अपने हाथों किये पाप का कैसा परिणाम भोगना पड़ता है। इसे करने से फिर स्पर्श सुख प्राप्त नहीं होता, और कई बार इसके कुछ काल न करने से, बेचैनी सी होने लगती है। इससे स्त्रियों के गुह्य अङ्गों की नाड़ियां खराब हो जाती हैं, और वह गृहस्थ का पूर्ण सुख भी उपभोग नहीं कर सकतीं; उनमें असन्तोष छाया रहता है। यह आदत बहुधा बड़े होने व गृहस्थ में प्रवेश करने पर भी नहीं छूटा करती।

वालिकाएं व स्त्रियें ऐसे रोगों का शिकार बन कर भी लज्जा या अज्ञानवश किसी से इन के विषय में कुछ कहती नहीं। परिणाम यह होता है कि वह प्रतिदिन दुर्बल होती जाती हैं। उनके पिता या सम्बन्धी यदि उन्हें किसी वैद्य या डाक्टर के पास ले जाते हैं, तो भी पूरी हकीकत के न कहे जाने से, वह भी कुछ विशेष उपकार नहीं कर सकता। ऐसे अनुभवी बहुत कम होते हैं, जो रोगी को देखते ही उसके रोग को पहिचान लें। पहिचानने पर भी यदि कोई रोगिणी से पूछ बैठे कि तुम्हें अमुक रोग तो नहीं है? तो इसका उत्तर प्रायः सिर नीचा किये हुए नकार में ही मिलता है। हमने ऐसे रोगियों को पहिचान कर जब भी बिना कुछ कहे, चिकित्सा की है, तो लाभ होते देखा है। बहुत से वैद्य, डाक्टर ऐसे रोगियों के विवाह कर देने की मंत्रणा देते हैं। पर नवविवाहिताओं को विवाह के बाद बहुत कमजोरी व रोग की प्रबलता

हो जाती है। ऐसी अवस्था में रोग की चिकित्सा झट-पट करानी पड़ती है, और पूरा पथ्य (परहेज़) न होने के कारण देर लगती है। बहुत से मनुष्य तंग आकर अपनी स्त्री या गृहस्थ को ही कोसने लगते हैं। अतः सभी बहिनों को चाहिए कि जब भी कोई ऐसा रोग हो जाय, तो तुरन्त अपनी चिकित्सा (इलाज) प्रारम्भ कर दें। और साथ ही आगे लिखे हुए सत्-नियमों का पालन भी करें। कारण यह कि लड़कियों को लड़कों से भी अधिक अवसर अपने सर्वनाश करने के प्राप्त हुआ करते हैं। एक तो वह अपने समय का बहुत सा भाग घर में, जहां कि इस प्रकार की बातें हुआ करती हैं, व्यतीत करती हैं। दूसरे उन्हें एकान्त भी अधिक प्राप्त होता है, आदि।

भारतीय व्यवस्थापिका सभा ने भी शारदा कानून बनाकर, लड़कियों का कम से कम चौदह वर्ष तक ब्रह्मचारिणी रहना आवश्यक कर दिया है। अब यवनों के राज्य काल में होने वाले अत्याचार या अविवाहित कन्याओं के माता पिता से ज़बर्दस्ती छीने जाने के कारण बने 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी' जैसे कुनियम का नाम भी लेने की बात नहीं रही। अब तो आवश्यकता है कि कन्याएं स्वयं रूप, गुण, विद्या और सदाचार में अनुपम हों और उस के बाद ही कोई अन्य कार्य्य करें। स्त्री को स्वयं ही अपना रक्षक होना चाहिए, माता, पिता, पुत्र आदि सम्बन्धियों का तो केवल आश्रयमात्र होता है। उस की अनिच्छा होते हुए, उसे हाथ लगाना तो अलग रहा, उसकी ओर कोई देख भी नहीं सकता। एक स्थान पर लिखा है:—

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये, न स्त्री स्वातन्त्र्य-मर्हति ।।

अर्थात् ब्रह्मचर्य्यावस्था में स्त्री की रक्षा पिता, युवावस्था में पति, पति के न रहने पर या बुढ़ापे में पुत्र करे, परन्तु हम यहां दिये गये रक्षा के शब्दों से सहमत नहीं हैं। हमारा मत तो यह है कि लड़कियों की शारीरिक रक्षा की आवश्यकता तो है, पर आचार सम्बन्धी रक्षा की नहीं। हमें उन के अन्दर बालकपन से ही ऐसी आचरण की उच्चता भर देनी चाहिए कि वह स्वयं ही उसकी रक्षा कर सकें। ऐसी स्त्रियां ही अपनी शक्ति व उत्साह से दूसरों की रक्षा किया करती हैं। अभी थोड़े दिन हुए हैं कि मोगा की बीबी हरनामकौर ने कई डाकुओं को हराया व पकड़वाया था। इस के लिये उसका अत्यधिक आदर हुआ, और गवर्नर तक ने उसे पारितोषक दिया।

बालिकाओं व नव-युवतियों को चाहिये कि वह अपना जीवन संयम-पूर्ण व आदर्श बनाने का प्रयत्न करें। जो अपनी सहायता आप करता है, उस की रक्षा परमात्मा करता है। किसी ने और भी लिखा है—

आत्मानमात्मनायास्तु रक्षयुस्ता सुरक्षिता ।

जो अपनी रक्षा आप करती हैं वह ही वास्तव में सुरक्षिता हैं, ब्रह्मचारिणियां हैं।

मासिकधर्म

साधारणतः लगभग अट्ठाईस दिन के अनन्तर डिम्बग्रन्थियां गर्भाशय में डिम्ब (रक्त सा तरल) फैंका करती हैं जो कि मासिक कहलाता है । यह स्राव चार दिन और विशेष अवस्थाओं में दो से छे दिन तक रहता है । यह प्रायः बारह वर्ष की आयु में प्रारम्भ और पैंतालीस से पचास वर्ष तक की आयु तक रहता है । यही काल होता है, जब कि स्त्री में यौवन की विद्यमानता के अतिरिक्त मातृत्व की शक्ति रहती है । मासिक होने के प्रथम चार, छे वर्ष में स्त्री के अन्दर विकास की पूर्णता आती है । और इस समय में ही उसे अपने संयम करने की भी विशेष आवश्यकता है ।

प्रायः लड़कियों को मासिक आगमन का पता नहीं होता और जो कुछ उन्हें बताया भी जाता है, वह ठीक न होने के अतिरिक्त कई बार भयानक भी होता है । उपरि-निर्दिष्ट आयु में मासिक होना एक साधारण बात है, परन्तु एक बार एक मातृहीन पुत्री को इसकी क्लास की लड़कियों ने उसे प्रथम बार मासिक होने का कारण पूछने पर उसके अन्दर बहुत भयानक व्रण (जख़्म) बताया। लड़की ने जैसा भी उसे कहा गया था, वैसा ही अपने पिता से आन कहा । पिता भी कुछ चिन्तित हुआ, और एक डाक्टर के पास ले गया । जहां यह उत्तर मिला कि यह तो मासिक है, व्रण आदि कुछ नहीं ।

मासिक के समय में स्नान नहीं करना चाहिए और ना ही कोई लस्सी आदि, ठण्डी या वायु उत्पन्न करने वाली वस्तु

ही सेवन करनी चाहिए । इन दिनों में ज्यादा व्यायाम या काम करना भी हानिकारक होता है । अतः चाहिये यह कि आवश्यक कार्य्यों के अतिरिक्त समय, एक स्थान पर बैठ कर किसी हलके से कार्य्य को करते हुए ही बिता दिया जाय । इन दिनों में केवल सोते रहना या आलसियों की तरह पड़े रहना भी ठीक नहीं । इन नियमों के उल्लंघन से मासिक सम्बन्धी नाना रोग हो जाते हैं । कईयों को मासिक स्राव में कमी, व वह एक दो दिन ही होने लगता है । और कईयों में वह अधिक और बहुत दिन रहता है । इस स्राव का रंग खरगोश के रक्त (खून) के समान, या लाख के समान न होकर काला आदि, या कुछ दर्द व जलन से या लेसदार होने लगता है । नियम से रहना ठीक है, और जो भी रोग साधारणतः हो जाते हैं, उनकी चिकित्सा हम 'स्त्री रोग-चिकित्सा' शीर्षक में अलग आगे दे रहे हैं ।

प्रदर

हम पहिले लिख आये हैं कि यह रोग प्रायः अपने आप किये नाश से होता है, चाहे वह नाश किसी भी प्रकार से किया जाय । ऐसे वैसे पदार्थ खाने, अत्यधिक चिन्ता, रात दिन भोजन तो बढ़िया व खूब खाना परन्तु काम कोई न करने से, गर्भपात या किसी और कमज़ोरी के कारण, दिन में सोते रहने से, या अधिक उपवास करने से भी यह रोग हो सकता है । इसमें स्त्रियों के गुह्य-मार्ग (योनि) से श्वेत, पीला, लाल जल सा, परन्तु कुछ गाढ़ा तरल निकला करता

हैं। कई वार यह वहुत गाढ़ा व वदबूदार भी होता है । प्रदर की सामान्य अवस्था में हाथ पैर टूटते रहते हैं, सिर व कमर में दर्द रहती है, सुस्ती छाई रहती है; परन्तु जव स्राव अधिक हो जाय तव कमज़ोरी वहुत अधिक, सिर में चक्कर, प्यास, हाथ पैरों में जलन, शरीर का पीलापन, आलस्य, भोजन का ठीक न पचना व भूख न लगना और हिस्टीरिया तक होने लगता है। कई वार इस तरल के वहीं जम जाने से वहां खुजली होने लगती है। और उस भाग के ठीक प्रकार साफ न करने से दुर्गन्ध आने लगती है । इस रोग से फिर और छोटे छोटे रोग जैसे वुखार आदि हो जाते हैं और फिर तपेदिक की सी हालत हो जाती है । रोग की चिकित्सा उसके उत्पन्न होते ही करा लेना बुद्धिमत्ता है । किसी ने कहा है :—

जातमात्रः चिकित्स्यस्तु नापेक्ष्योल्पतयागदः ।
वन्हिशत्रुविषैस्तुल्यः, स्वल्पोपि विकरोत्यसौ ॥

अर्थात् रोग की उत्पन्न होते ही चिकित्सा करानी चाहिए। बीमारी छोटी सी है, यह समझ कर उसकी लापरवाही नहीं करनी चाहिए यह आग, शत्रु और विष की तरह से ही थोड़ी सी भी एक दम नाश कर देती है ।

———

हिस्टीरिया

यह भी अपने किये हुए अतिनाश, चिन्ता, शोक आदि, व प्रदर की अधिकता का परिणाम है। इस से बेहोशी अर्थात् फिट होने लगता है, हृदय कमज़ोर हो जाता है, धड़कन बढ़ जाती है और नींद भी कम हो जाती है। पहिले तो यह रोग कभी कभी होता है, पर कुछ समय में ही जल्दी जल्दी होने लगता है, यहां तक कि एक दिन में ही कई कई बार हो जाता है। यह रोग ऐसा भयङ्कर है कि न जाने कहां व कब इसका दौरा हो जाय। जिस किसी ने इसका रोगी फिट के समय में देखा हो, वह इसकी भयानकता को समझ सकता है।

अष्ट मैथुनों से बचो

हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों के आदर्श बहुत ऊंचे थे। वह बहुत सी बातों को हमारे लिए हानिकर समझते थे, पर उन उन बातों के बिना आज हम अपने आप को सभ्य ही नहीं दीखते। उनके अभाव में हमें अपना जीवन नीरस जान पड़ता है। परन्तु यदि हमें अपने आपको सुधारना या सबल बनाना है, तो सब से उत्तम यही है कि हम उन सब का बिलकुल त्याग कर दें। किसी कारण से यदि हम नवीन सभ्यता के त्यागने को तय्यार नहीं, तो कम से कम यह प्रतिज्ञा तो अवश्य कर लें कि जब तक अपना मन काबू न कर लेगें, उस ओर पग न धरेंगे। क्योंकि—

मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयोः।

मन के द्वारा ही आदमी बन्धता या छुटकारा पाता है। अपने मन को काबू कर लेने के बाद सब कुछ सहल हो जाता है। दक्ष ने निम्न अष्ट मैथुनों का वर्णन लिखा है:—

स्मरणं, कीर्त्तनं, केलिः, प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च, क्रियानिष्पत्तिरेव च॥
एकन्मैथुनमष्टाङ्गं, प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्य्यमेतदेवाष्ट-लक्षणम्॥

विषय या तत्सम्बन्धी विचार, विषय सम्बन्धी चर्चा, परस्पर क्रीड़ा, कामेच्छा से दर्शन, एकान्त में गुप्त बातें, विषय के निमित्त ध्यान, उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न और

प्रत्यक्ष सम्भोग यह आठ मैथुन हैं, और इनके विपरीत चलना ही ब्रह्मचर्य्य है।

इन में से प्रत्येक का पृथक् पृथक् निरूपण करने से पहिले यह लिखना आवश्यक है कि यह तो मुनियों के समय के मैथुन हैं, जिन से अलग रहने का उपदेश वह कर गये हैं। परन्तु उन्हें हमारे कलिकाल के पामर भाइयों का विचार तक न आया था, जिन्होंने कि तलवार की मीठी धार के समान काटने वाले कृत्रिम मैथुनों का आविष्कार किया है। इस लिए प्रिय पाठक गण ! कृत्रिम मैथुनों (हस्त, पुंस्त्व, आदि मैथुन) जिनका वर्णन हम पहिले कर आये हैं, का भी समावेश आप यहां और कर लें। अष्ट मैथुनों में से हम दर्शन को ही सर्वमुख्य समझते हैं कारण कि जब तक किसी वस्तु का दर्शन ही न हुआ हो, तब तक उसकी कल्पना, विचार या चर्चा आदि नहीं हो सकते।

प्रेक्षण—आज कल हम लोग प्राचीन काल की तरह गुरु या आचार्य्य कुल में नहीं रहते, और शहर या गांव आदि में ही रहना होता है ऐसी अवस्था में 'हम स्त्री मात्र का दर्शन न करें,' यह हो नहीं सकता, पर तो भी इसे दूर करना हमारा विशेष कर्तव्य है। हम लोग जहां कोई स्त्री दिखाई दे, उधर ही ताकने लगते हैं; कहीं कोई साढ़ी या अच्छे वस्त्र वाली स्त्री, चाहे वह आयु में अपनी दादी के समान क्यों न हो, को देखने लगते हैं। हमारा कर्तव्य तो 'मातृवत् परदारेषु' का पालन है। घर में माता व बहिन को देखने पर हमारे हृदय में कोई कुभाव नहीं उठता, उसी प्रकार अन्य स्त्रियों को देखने पर भी हमारे मन में वही भाव रहना चाहिये। हम

शरीरे सर्वधातूनां, सारवीर्य्यप्रकीर्तितम् ।
तदेव चौजस्तेजश्च वलं कान्तिः पराक्रमः ।
यस्मिन्शुद्धे शरीरस्य गतिः शुद्धा भवेन् सदा ॥

शरीर की सभी धातुओं का सार वीर्य्य कहा है। वही हमारे शरीर में ओज, तेज, वल, कान्ति, पराक्रम शब्दों से कहा गया है। उसके शुद्ध होने से ही शरीर अपने सब कार्य्य भली प्रकार कर सकता है। निम्न श्लोक में चरक लिखते हैं कि वीर्य्य की सर्व प्रकार से रक्षा करनी चाहिये, कारण कि वीर्य्य भोजन का सब से अन्तिम निचोड़ है। शरीर में इसकी कमी से न केवल शोष, तपेदिक आदि बहुत से रोग ही हो जायेंगे, किन्तु मृत्यु तक हो सकती है।

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः ।
क्षये ह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वा नियच्छति ॥

ओज

शरीर में वीर्य्य की पूर्णता होने पर ओज की वृद्धि होती है, उसके बिना मनुष्य एक क्षण भी जी नहीं सकता। आठवें मास के गर्भ में ओज, कभी माता से गर्भ में, व कभी गर्भस्थ बालक से माता में आता जाता रहता है, इसी कारण बहुधा इस मास में उत्पन्न बालक या बालिका नहीं जीते। पर ओज की वृद्धि हम में वीर्य्य की पूर्णता के बिना नहीं होती और उसके अभाव में हमारे अन्दर तेज नहीं आ सकता।

———

डाक्टरी मत

अर्वाचीन विज्ञान के अनुसार वीर्य्य के दो प्रवाह हैं। एक अभ्यन्तरीय (Internal secretion or orchitic hormone) तथा दूसरा बाह्य (External secretion), बाह्य प्रवाह रुक जाने से कोई हानि नहीं होती, पर अभ्यन्तरीय प्रवाह रुकने से ओज व परिश्रम की शक्ति जाती रहती है । घोड़ा या बैल आदि पशु यदि खस्सी कर दिये जांय, तो उन में वह बात नहीं रह जाती, जो कि उन में अभ्यन्तरीय प्रवाह के होते हुए थी। इनके मत से वीर्य्य का निर्माण रक्त से होता है। शुक्र ग्रन्थियां रक्त से उन उन अंशों को ग्रहण कर लेती हैं, जिन से वीर्य्य बनता है। यूनानी वाले भी भोजन से रस, रस से रक्त, रक्त से अवशिष्ट अंगों का वर्णन मानते हैं, और उस समय सारभूत बचने वाली वस्तु वीर्य्य (मनी)है ।

डाक्टरी मत से वीर्य्य आक्साइड आफ प्रोटीन, स्नेह, फास्फेट आफ लाइम, क्लोराइड आफ सोडियम, फास्फेट व फास्फोरस की जलमयमूर्ति है । यह कुछ गाढ़ा व लेसदार होता है। अनुवीक्षण यन्त्र (माइक्रोसकोप) से देखने पर इस में शुक्रकीट दिखाई देते हैं। इन शुक्रकीटों का होना ही वास्तविक पुरुषत्व का द्योतक है। जिन पुरुषों के वीर्य्य में यह नहीं होते, वह वीर्य्य की विद्यमानता के होते हुए भी पुरुष कहलाने के अधिकारी नहीं। इसके तीन भाग होते हैं, पहिला सिर का, जो मुख्य होता है, दूसरा मध्य भाग व तीसरा पुच्छ भाग। पुच्छ भाग की सहायता से यह गति किया करते हैं। एक बार

के वीर्य्य नाश में यह ६-७ करोड़ तक होते हैं । बार बार के वीर्य्य नाश से इनकी संख्या घटती रहती है और कई बार यह बिलकुल नष्ट हो जाते हैं । वीर्य्य में इन कीटाणुओं का होना ही प्राणशक्ति का द्योतक है। जितनी ही इनकी संख्या अधिक होगी, उतनी ही प्राणशक्ति भी अधिक होगी । वीर्य्यनाश से इनका नाश होता है व प्राणशक्ति नहीं रहती। इन कीटाणुंओं का क्षय ही हमें अमोघवीर्य्य बनने से हटा देता है । अधिक वीर्य्यनाश करने के अतिरिक्त सूज़ाक आदि रोग हो जाने से भी यह नहीं रहते। मनुष्य न केवल सारी आयु सन्तति-हीन रहता है, किन्तु नपुंसक सा हो जाता है।

शुद्ध वीर्य्य लेसदार होने के कारण पतले कपड़े पर स्वप्न आदि के समय पड़ने से उसे माया लगने की तरह अकड़ा देता है, और अधिक से अधिक हलके पीलेपन के अतिरिक्त कोई चिन्ह नहीं होता। यौवन के आरम्भ में जब कि वीर्य्य विशेषकर बनने लगता है; तब साथ ही साथ स्वर यन्त्र भी बढ़ने लगता है, आवाज़ भारी हो जाती है; यह एक साधारण स्वाभाविक चिन्ह है कि यौवन आ रहा है, और सावधान भाव से वीर्य्य की रक्षा के लिए प्रस्तुत हो जाना चाहिये।

क्या ब्रह्मचर्य्य से हानि सम्भावित है।

मेरे पास बहुत से रोगी ऐसे आया करते हैं कि जिनकी बातें व दलीलें सुन कर हंसी आया करती है। उनका कहना है कि यदि हमारा वीर्य्य न निकलेगा, तो हम नपुंसक हो जाएंगे। प्रमाण यह कि यदि हम देर तक अपने हाथ पैर को न हिलाय

जुलायें, तो वह कर्म्महीन हो जाते हैं; उसी प्रकार यदि इस इन्द्रिय को भी चेष्टाहीन रहने दिया गया, तो फिर यह भी सन्तानोत्पत्ति के योग्य न रह जायगी और नाही हमारे में पुरुषत्व का विकास होगा। उनके इस सारे कथन का परिणाम यह हुआ कि वीर्य्य नाश न करने से उन्हें कई प्रकार का घाटा रहेगा। वह नपुंसक हो जायेंगे, उन में पुरुषत्व का विकास न होगा और ऐसी अवस्था में अच्छी सन्तान का होना या सन्तान का होना ही सम्भव नहीं। उनके इस विचार को पुष्ट करने वाले बहुत से अनपढ़ या पढ़े लिखे, झूठे व ठगने वाले चिकित्सक भी हैं; परन्तु आश्चर्य्य होता है उनकी बुद्धि पर, जो कि उनका कहना मान कर अपना संहार स्वयं करते हैं। उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि वीर्य्य नाश नहीं, किन्तु संयम या वीर्य्यरक्षा ही उन्हें नपुंसक होने से बचायेगी, और पूर्णतया ब्रह्मचर्य्य पालन से ही उनका विकास होगा। संयम से हानि नहीं होती, इस पर डाक्टरी मत यह है कि वीर्य्य के अभ्यन्तरीय प्रवाह के कारण, इसका व्यवहार शरीर के लाभ के लिए हर समय होता रहता है। ऐसे किसी अंग में कभी हानि हो भी सकती है जहां उसका एक ही कार्य्य हो, परन्तु यहां तो बाह्य प्रवाह के बन्द होते हुए भी अभ्यन्तरीय प्रवाह के होते रहने से कोई हानि नहीं होती।

संसार में हम प्रतिदिन अनपढ़ ज़मींदारों, गूजर आदिकों में देखा करते हैं कि वह अपने बछड़ों को उनके अन्दर पूर्ण पुरुषत्व की शक्ति आने तक उसी जाति के स्त्री-पशुओं से अलग रखते हैं, यहां तक कि उन्हें परस्पर सूंघने तक भी नहीं दिया जाता। मिलिटरी डेयरीज़ या विदेशों में इसका और

भी अधिक विचार रक्खा जाता है। हम देखते हैं कि ऐसे पशु बहुत सुन्दर, सुडौल तथा अच्छी नसल के जन्मदाता होते हैं। इतना ही क्या, हम लोग मुर्गे, मेंढे, बटेर आदि विविध पशु पक्षी लड़ाने के लिए पालते हैं, परन्तु उन से, इस लिए कि वह लड़ाई में जीतें, पूर्ण ब्रह्मचर्य्य पालन कराया जाता है। और तो और संसार की असभ्य जंगली जातियां भी अपनी सन्तति का वीर्य्यनाश न हो, इस के लिए सचेत रहती हैं, तो फिर सभ्य जगत् के रहने वालों का क्या कर्तव्य है, यह पाठक स्वयं ही विचारें। इसी प्रकार दौड़ के घोड़े आदि के लिए भी यही नियम है; कारण कि हम लोग उन के अन्दर पूर्ण शक्ति व विकास देखना चाहते हैं, और शक्ति व विकास उन में तभी आ सकता है, जब कि इन में वीर्य्य जैसी अमूल्य वस्तु अखण्डित रहे, तब भला ब्रह्मचर्य्य पालन किस प्रकार किसी को नपुंसक, पुरुषत्व व विकास-हीन बना सकता है।

हम भावी जीवन को सुखकर बनाने के लिए धन बचाते रहते हैं, कि जिस से हमारा सारा जीवन सुखी बना रहे। जब हमारे पास सम्पत्ति हो जाय, माता पिता या कहीं और से बहुत सा धन प्राप्त हो जाय, तब यदि हम उस का अपव्यय आरम्भ कर दें, तो दुनियां हम पर हंसती है, सभी चतुर लोग हमें मूर्ख बनाते हैं और कोई भी आदर नहीं करता। सभी समझाने लगते हैं कि देखो ! व्यर्थ में अपने अमूल्य धन को नष्ट न करो, नहीं तो दिवाला निकल जायगा। तुम कहीं के न रह जाओगे। इसी प्रकार वीर्य्य रूपी धन के अपव्यय से जब हमारा दिवाला निकल जायगा, तो हम कहीं के न रहेंगे; कारण

यह कि पैसा तो फिर भी प्राप्त हो सकता है; पर पुरुषत्व की शक्ति एक बार चली जाने से फिर किसी प्रकार भी नहीं मिल सकती। इस के अतिरिक्त धनाढ्यों में विशेषकर, व अन्य पुरुषों में भी यह भाव भरा हुआ है कि कभी कभी वीर्य्यनाश करना स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है, पर अभी तक किसी भी विज्ञान-वेत्ता (साइण्टिस्ट) ने ऐसी बात नहीं कही। जो लोग कभी कभी वीर्य्य नाश करते रहते हैं, उन का स्वास्थ्य हमारे सामने है, और उनकी क्षति हम देख सकते हैं। साइन्स तो हमें यह बताती है कि चढ़ती जवानी में वीर्य्य नाश न होने देने से मनुष्य की शारीरिक व मानसिक शक्ति बढ़ती है। किसी विदेशीय विद्वान् ने लिखा है:—

The scientific fact is, that the retention of the Semen in the growing man makes for mental and physical power.

कई रोगी व डाक्टर यहां तक कहा करते हैं कि वाग्भट्ट आदि वैद्यक ग्रन्थों में लिखा है कि वीर्य्य के न निकालने से सूजन, दर्द, पथरी आदि रोग हो जाते हैं। हमें दुःख होता है ऐसे डाक्टरों व रोगियों पर जो कि बिना एक बात के समझे बूझे ही दूसरे को कुमार्ग पर धकेलते हैं, या स्वयं जाते हैं। यदि इन्होंने मैट्रिक में संस्कृत पढ़ी थी, तो इसका अभिप्राय यह नहीं कि वह वाग्भट्ट या चरक के मनमाने अर्थ लगाया करें। उन के लिए इन के अर्थ, बिना किसी अच्छे अनुवाद के या पूर्ण संस्कृत ज्ञान के, लगाना असम्भव है। मनमाने अर्थ लगाने का एक कारण यह भी है कि बहुत से अङ्गरेज़ी सभ्यता

में रङ्गे डाक्टरों को, आयुर्वेद की महत्ता खटकती रहती है। हम यह विश्वास दिलाते हैं कि वाग्भट्ट आदि में ऐसा कहीं नहीं लिखा। यह तो वहां लिखा है कि जब एक बार वीर्य्य किसी काम-विकार या काम की उत्तेजना से, कृत्रिम या अकृत्रिम मैथुन द्वारा अपने स्थान से चल चुका हो, तब उसे यदि बलात् रोका जाय, तो उस से पथरी, दर्द, सूजन, ज्वर व हृदय में व्यथा हो सकती है, पर एक सत्य-ब्रह्मचारी में यह बात सम्भव ही नहीं।

वाग्भट्ट सूत्र-स्थान के सातवें अध्याय में लिखता है कि ब्रह्मचर्य्य, आहार व शयन युक्ति-पूर्वक करने से शरीर देर तक धारण किया जा सकता है। उसी ने एक दूसरे स्थान पर लिखा है कि एक सदाचार-व्रत लेने वाले को पूरा पूरा शरीर, वाणी और हृदय का दमन करना होगा :—

शरीर वाक् चेतसां दमः।

चरक तो इतना स्पष्ट लिख गये हैं कि सदाचारी पुरुष को पराई स्त्री या अन्य पशु योनि से स्वप्न में भी मैथुन न करना चाहिये। उनका कहना है कि 'न वीर्य्यं जह्यात्' अर्थात् कोई ऐसा काम न करे जिस से वीर्य्य हानि हो। आयुर्वेद का आदर्श तो यह है:—

सर्वमन्यत् परित्यज्य, शरीरमनुपालयेत्।
तद्भावेहि भावानां, सर्वाभावः शरीरिणाम्॥

संसार की सभी बातें छोड़ कर अपने शरीर की हर प्रकार से पालना करनी चाहिये। उस के न रहने पर हमारी

सभी कामनाओं का नाश हो जायगा, और शरीर की पालना तथा दीर्घायु का एक मात्र उपाय ब्रह्मचर्य्य है।

विदेश वाले भी वीर्य्य रक्षा के महत्व को समझते हैं। अमेरिका की एक विदुषी विशेषज्ञा लिखती है कि कई एक मनुष्य, अपनी कई एक शक्तियों का प्रयोग, वर्षों तक नहीं करते, परन्तु फिर भी उन की वह शक्तियां जैसी की तैसी व पूर्णता को प्राप्त हुई रहती हैं। यदि कोई मनुष्य सारी आयु भर न रोया हो, और यदि वह अपनी बड़ी आयु में रोना चाहे, तो भर पेट रो सकता है, उस की अश्रु-ग्रन्थियां वैसा ही कार्य्य करेंगी। इसी प्रकार एक स्त्री चौदह पन्द्रह वर्ष के बदले बीस पच्चीस वर्ष की आयु में माता बनती है, तो भी उस का दूध, दुग्ध-ग्रन्थियों से वैसे ही उतरेगा; केवल अन्तर यह होगा कि अब वह अधिक पूर्णता लिए हुए हो। यही बात वीर्य्य कोषों के विषय में भी कही जा सकती है। संसार में इस समय लाखों ऐसे आदमी हैं, जिन्हों ने स्वेच्छा से या किसी कारण वश विवाह नहीं कराया और ब्रह्मचर्य्य का पालन कर रहे हैं, पर उन्हें कोई हानि पहुंचते नहीं देखा या सुना। अतः किसी प्रकार भी ब्रह्मचर्य्य से हानि सम्भावित नहीं है। अब तो सभी अर्वाचीन वैज्ञानिक व डाक्टर यह मानने लग गये हैं कि ब्रह्मचर्य्यमय जीवन (Celibate life) से मनुष्य का स्वास्थ्य किसी प्रकार भी खराब नहीं होता, अच्छा ही होता है।

सर एण्ड्रू क्लार्क लिखते हैं, 'संयम से कोई हानि नहीं पहुंचती और न वह मनुष्य के स्वभाविक विकास को ही रोकता है, किन्तु इसका पालन तो बल और बुद्धि बढ़ाता है। संयम

यदि न रहे, तो आत्मा का अधिकार भी जाता रहता है, आलस्य बढ़ता और शरीर ऐसे रोगों का शिकार बन जाता है जो कि अगली पीढ़ियों तक चले जाते हैं। यह कहना कि विषय भोग नवयुवकों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है, केवल भ्रमात्मक ही नहीं, अपि तु उन के लिए निर्दयता भी है।

इसी की पुष्टि में डा० वीरी लिखते हैं:—सभी जानते हैं कि यदि भूख की तृप्ति न हो, या श्वास चलना बन्द हो जाय, तो कौन कौन से दुष्परिणाम हो सकते हैं, पर कोई भी यह नहीं लिखता कि स्थायी या अस्थायी किसी भी प्रकार के संयम से कोई भी छोटा या बड़ा, किसी भी प्रकार का रोग हो सकता है।

इसी प्रकार डाक्टर एलबर्ट मोल (Albert Moll) अपनी पुस्तक में लिखते है:—I am convinced that the overwhelming majority of persons are not in the least injured by continuous continence, whether during youth or afterwards. अर्थात् मैं यह मानता हूं कि ऐसे लोग बहुत भारी संख्या में हैं, जिन्हें कि जवानी या बुढ़ापे में लगातार ब्रह्मचर्य्य पूर्वक रहने से किसी प्रकार की भी हानि नहीं हुई।

यूरोप की एक बड़ी भारी मैडीकल कांफ्रेंस में वहां के डाक्टरों व वैज्ञानिकों का सर्व सम्मति से निम्न मत था:—

'नवयुवकों को सिखाना चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य के पालन से उन के स्वास्थ्य को कभी हानि नहीं पहुंच सकती, किन्तु वैद्यक व शरीर शास्त्र की दृष्टि से तो ब्रह्मचर्य्य ऐसी वस्तु है कि जिस के पालन में उत्तेजना मिलनी चाहिये।'

भगवान् कृष्ण का ब्रह्मचर्य्य उपदेश

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

भोग और ऐश्वर्य में आसक्त लोगों की कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का निश्चय करने वाली बुद्धि स्थिर नहीं रहती ।

विषयाः विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

यततोह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत् मत्परः ।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

निराहारी मनुष्य के विषय छूट जाते हैं, परन्तु उन की चाह नहीं छूटती; जब परब्रह्म का अनुभव होता है, तब विषयों की चाह भी छूट जाती है । इन्द्रियों के आहार अर्थात् विषयों से अलग रहना भी निराहार ही है। ऐसे निराहारी मनुष्य के विषय हटते हैं और इसी से विषयों की चाह छूटती है।

हे कुन्तिपुत्र ! इस प्रकार प्रयत्न शील पुरुष के मन को भी मथन करने वाली ये इन्द्रियें बलपूर्वक, अपने उद्देश से गिरा देती हैं ।

इस लिए उन सब इन्द्रियों का संयम, योग से युक्त होकर और मेरे प्रति भक्ति रखते हुए करो । जिस की इन्द्रियें वश में हो जांय उस की बुद्धि स्थिर हो जाती है ।

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः, कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः, संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

(सब इन्द्रियों का संयम व मेरे प्रति भक्ति न होने से मन विषयों की ओर दौड़ता है), विषयों का ध्यान करने से ही मनुष्य को विषयों से आसक्ति हो जाती है, और फिर आसक्ति से ही कामवासना उत्पन्न होती है और उस के पूर्ण न होने से क्रोध की उत्पत्ति होती है। क्रोध से मनुष्य अविवेकी बन जाता है। अविवेक से स्मृतिभ्रंश (भ्रमित स्मरण शक्ति वाला) हो जाता है। स्मृतिभ्रंशता से बुद्धि का नाश हो जाता है, और बुद्धि के नाश से पुरुष सन्मार्ग से गिर जाता है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिपर्यवतिष्ठते ॥
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥

जिस का आत्मा अपने वश में है वह राग द्वेष से परे रह कर, अपने वश में की हुई इन्द्रियों से सांसारिक विषयों को भोगता हुआ भी प्रसन्न रहता है।

ऐसी प्रसन्नता प्राप्त होने से उस के सभी दुःखों का नाश

हो जाता है और प्रसन्न रहने वाले की बुद्धि भी शीघ्र ही स्थिर हो जाती है।

जो पुरुष अयुक्त अर्थात् साधना रहित होता है, उस की बुद्धि स्थिर नहीं रहती और नाही उस में आस्तिकता आती है। आस्तिक भाव के बिना उसे शांति नहीं मिलती और जब शांति ही नहीं तो सुख कहां ?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

इन्द्रियों के बीच में विचरता हुआ मन, किसी भी इन्द्रिय से खेंचा जा सकता है, और वही इन्द्रिय इस भावना रहित मनुष्य की बुद्धि अर्थात् विवेक शक्ति को ऐसे खींच लेती है जैसे जल में डोलती हुई नाव को वायु का झोंका ले जाता है। (यह तो हुआ एक इन्द्रिय का प्रभाव, यदि सभी इन्द्रियां मिल कर मन को काबू कर लें, तो मनुष्य की क्या गति होगी ? यह पाठक स्वयं सोच लें)।

इस लिए हे महाबाहो (अर्जुन)! जिस पुरुष ने अपनी सभी इन्द्रियों को सब प्रकार के विषयों से हटा लिया है, उस की बुद्धि स्थिर हो जाती है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥

विहाय कामान्यः सर्वान् पुंमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

चारों ओर से पूर्णता को प्राप्त होने वाले, अचल प्रतिष्ठा युक्त समुद्र में, अनेक नदियों का जल गिरते रहने पर भी, जैसे उसकी शान्ति भङ्ग नहीं होती, वैसे ही स्थिर बुद्धि वाले पुरुष के अन्दर भी समस्त विषय उस की शान्ति को भङ्ग किये बिना ही समा जाते हैं; वह ही सच्ची शान्ति को प्राप्त करता है, काम वासना (विषय भोगों) की इच्छा करने वाले को कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं होती ।

जो पुरुष सब विषयों का त्याग कर, मोह ममता से रहित हो कर, अहङ्कार रहित और निःस्पृह भाव से व्यवहार करता है उसे ही अध्यात्मिक शांति प्राप्त होती है ।

हे पार्थ (अर्जुन)! यही ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है, इस स्थिति को प्राप्त कर लेने के अनन्तर कोई मोहजाल में नहीं फंसता। अन्तकाल में भी इस स्थिति को प्राप्त करने वाले मोक्ष पा जाते हैं ।(विषया विनिवर्तन्ते से ले कर यहां तक लिखे श्लोकों की ब्रह्मचारी के लिए उपयोगिता इस से भी सिद्ध होती है, कि महात्मा गांधी जैसे ब्रह्मचारी भी इसका व्रत के पालन में सहायता प्राप्त करने के लिए नियम से प्रतिदिन पाठ करते हैं ।)

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥
यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥

कर्मेन्द्रियों (हाथ पैर आदि) का हठपूर्वक दमन कर, जो मन से विषयों का चिन्तन किया करता है, वह मूढ मिथ्याचारी अर्थात् झूठा ढोंग रचने वाला कहलाता है ।

हे अर्जुन ! विशेषता तो उस मनुष्य की है जो इन्द्रियों का मन से दमन करता हुआ, कर्मेन्द्रियों द्वारा विना किसी आसक्ति के कर्म्मयोग का आरम्भ करता है ।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

श्रेष्ठ पुरुष (कर्म्मयोगी व ज्ञानी) जो कुछ करता है, अन्य सांसारिक पुरुष भी वैसा ही किया करते हैं । वह जिस बात को प्रमाण कर देता है, उस का सभी अनुकरण करते हैं, (इस लिये हमारे नेताओं व हम सभी को अपना जीवन आचारपूर्ण व आदर्श बनाना चाहिये) ।

अर्जुन उवाच–अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥
श्री भगवानुवाच–काम एष, क्रोध एष, रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिहवैरिणम् ॥

अर्जुन भगवान से पूछते हैं, 'पुरुष इच्छा न रहते हुए भी किस की प्रेरणा से बलपूर्वक नियुक्त किये की तरह पाप करता है।' श्री भगवान उत्तर देते हैं, 'काम और क्रोध यह शरीर में रजोगुण के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। यह महापेटू और महापापी हैं, शत्रु हैं; यही कारण है कि वासना तृप्त नहीं होती' (मनुष्य क्रोध के कारण इतना अविवेकी हो जाता है कि वह कुछ नहीं देखता और पाप ही पाप करता चला जाता है। काम और क्रोध मनुष्य के वैरी हैं, कारण कि मनुष्य इनके वशीभूत होकर अपना नाश कर लेता है। कहा भी है कि "न जातुः कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति" अर्थात् विषयों के उपभोग से काम की वासना शान्त नहीं होती)।

धूमेनाव्रियते वन्हिर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथातेनेदमावृतम् ॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥

जिस प्रकार अग्नि धुंए से, शीशा मैल से, गर्भ झिल्ली से ढका रहता है, उसी प्रकार इन (काम-क्रोध) के द्वारा यह ज्ञान ढका हुआ है।

हे कुन्तिपुत्र ! यह ज्ञान, ज्ञानियों की नित्य की वैरी और कभी तृप्त न होने वाली कामरूपी अग्नि से ढका है।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतै र्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥

मन बुद्धि और इन्द्रियां ही इस काम के किले हैं। इन्हीं के सहारे यह ज्ञान पर पर्दा डाल कर मनुष्य को मोहित कर लेता है।

इस लिए हे भरतश्रेष्ठ। तू पहिले इन्द्रियों का दमन करके इस 'काम' नाम वाले पापी का नाश कर, जिस ने मनुष्य के सांसारिक पदार्थों व पारमार्थिक बातों के ज्ञान का नाश कर डाला है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मनः।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥

इन्द्रियों के विषयों को रोकने से ही वैरी काम नहीं मिटता। कारण कि जगत् के स्थूलतत्वों के ज्ञान से अधिक कठिन ज्ञान, इन इन्द्रियों का है, और मन का ज्ञान प्राप्त करना इन्द्रियों से भी अधिक सूक्ष्म है। बुद्धि का ज्ञान मन से भी अधिक सूक्ष्म हैं और आत्मा का ज्ञान सब से सूक्ष्म है।

हे महाबाहो अर्जुन! इस प्रकार बुद्धि से भी सूक्ष्म जो आत्मा है उसको पहचान कर, और अपना संयम करते हुए, तू इस कामरूप कठिनता से जीते जाने वाले शत्रु को मार डाल।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनियत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥
ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥
शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीर विमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥

जो पुरुष इन्द्रियों द्वारा होने वाले बाह्य पदार्थों के स्पर्श-सुख से असक्त (अलग) है, जिसे अपने अन्दर (भगवत् प्रेमरूपी) सुख की प्राप्ति होती है । वह परब्रह्म में लीन होकर अक्षय (अटूट) आनन्द को प्राप्त करता है ।

जितने भी संसार में स्पर्श आदि से होने वाले भोग हैं, वह हमें चाहे कुछ समय के लिए सुख कर दीखते हैं, परन्तु वास्तव में दुखों के देने वाले हैं । इस लिए सभी बातों के आदि और अन्त तक की बातों को समझने वाला इन विषयों में रमण नहीं करता ।

जिसने अपना शरीर त्याग करने से पहिले (मृत्यु से पहिले) ही, इसी लोक में काम-क्रोध से उत्पन्न वेग को दमन कर लिया है, वह यहां भी योगी व सुखी पुरुष है ।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥

काम-क्रोध से परे हट कर जिन्होंने अपने चित्त को वश

कर लिया है, और अपने अन्दर अवस्थित परब्रह्म को पहचान लिया है, ऐसे यतियों को सब ओर मोक्ष ही मोक्ष प्राप्त है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥
बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

मनुष्य को चाहिये कि वह अपना उद्धार स्वयं करे। अपने आप (अर्थात् अपने आत्मा) को गिरने या पतित न होने दे। कारण कि मनुष्य स्वयंमेव ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है।

जिस ने अपने मन और इन्द्रियों का निग्रह कर लिया है, वह अपने आप (अर्थात् जीवात्मा) का मित्र है। और जिसने अपने आप को नहीं जीता, वह अपने आप ही अपने शत्रु के समान है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थोविजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः॥

जिस ने अपने आत्मा को सर्दी-गर्मी,-सुख दुःख, मान-अपमान आदि सभी अवस्थाओं में जीत लिया है अर्थात् इन सब से उसके अन्दर कोई विकार नहीं आता। ऐसी शान्त आत्मा को परमात्मा की प्राप्ति होती है।

जिस मनुष्य ने सांसारिक पदार्थों व पारमार्थिक बातों के ज्ञान से अपने आप को तृप्त कर लिया है, अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है, मिट्टी, पत्थर व सोने में जिसे भेद-भाव अर्थात् लेशमात्र भी लोभ, नहीं रहा, ऐसे योगी पुरुष को ही युक्त कहते हैं अर्थात् उस की सिद्धि हो चुकी है।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्म्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

हे अर्जुन ! योग की प्राप्ति बहुत मात्रा में खा जाने या बिलकुल ही न खाने वाले को नहीं होती। नाहीं वह सदा सोते रहने वाले या चौबीसों घण्टे जागनेवाले को ही होती है। वह योग तो उसी व्यक्ति के दुःखों का नाश करता है, जिसका आहार विहार संयत है, काम काज ठीक समय पर होता है और जो ठीक समय पर ही सोता जागता है।

(पाठक ! नोट करलें कि योग की प्राप्ति तब तक नहीं होती, जब तक कि पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का पालन न किया जाय। ब्रह्मचर्य्य पालन के लिए भी खाना पीना, सोना बैठना व अन्य सभी कार्य नियमित, समय पर होने चाहियें। 'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति' अर्थात् ईश्वर प्राप्ति की इच्छा से योगी लोग ब्रह्मचर्य्यं का पालन करते हैं।)

अर्जुन उवाच—चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथिबलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

श्रीभगवानुवाच-असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

अर्जुन कहते हैं, 'हे कृष्ण ! यह मन बहुत ही चञ्चल, हठीला, बलवान् और दृढ़ है। इस लिए मैं इसका वश करना वायु के वेग के समान अत्यन्त कठिन मानता हूं।'

श्री भगवान् उत्तर देते हैं, 'हे कुन्तिनन्दन ! तुम्हारा कहना ठीक है, निश्चय ही यह मन कठिनता से वश में होता है और परम चञ्चल है, परन्तु ऐसा होते हुए भी इसका संयम धीरे धीरे अभ्यास व वैराग्य की सहायता से हो जाता है'।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र सम बुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेते हैं, सब के प्रति समान बुद्धि रखते हैं, और प्राणिमात्र के हित के लिए लगे रहते हैं, वह मुझे अर्थात् सर्वव्यापक भगवान् को पाते हैं।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमान मदान्विताः ।
मोहाद् गृहीत्वाऽसद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥

आसुरी भाव अर्थात् राक्षसी प्रकृतिवाले अपवित्र लोग दम्भ (छल कपट), मान व मदयुक्त होते हैं। वह असत् कार्य्यों

को भी मोह के वश होकर कभी भी पूर्ण न होने वाले काम की पूर्ति के लिये करते हुए, इस संसार में विचरण करते हैं।

काम का उपभोग ही हमारा कृत्य है, ऐसे निश्चय वाले यह लोग रात दिन चिन्ता के समुद्र में डूबे रहते हैं और मरने तक उन्हीं चिन्ताओं के समुद्र में घुलते रहते हैं।

यह काम-क्रोध परायण लोग सैकड़ों आशाओं के पाश (फंदे) में बन्धे हुए होते हैं और काम के भोग को पूरा करने के लिए अन्याय से धन आदिक पदार्थ एकत्रित करते हैं।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये, दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृत्ताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

ये काम, क्रोध से युक्त आसुरीभाव वाले लोग विचारा करते हैं, 'आज मैंने इस वस्तु को प्राप्त कर लिया है और कल तक मुझे यह (दूसरी वस्तु) भी मिल जायगी; इतना धन तो मेरे पास हो गया और इतना और हो जायगा।'

'इस शत्रु को मैंने मार डाला है, इसी प्रकार से बाकियों को भी मार गिराऊंगा। मैं ईश्वर हूं, मैं ही भोग भोगने वाला, सब सिद्धियों से युक्त, बलवान् व सुखी व्यक्ति हूं।'

'मैं धन कुबेर हूं और मेरा बड़ा परिवार है, अब मेरे बराबर संसार में और कोई नहीं। मैं यज्ञ करूंगा, दान दूंगा, आनन्द का उपभोग करूंगा,' इस प्रकार के अज्ञान में वे फंसे रहते हैं।

इस प्रकार अनेक कल्पनामय वस्तुओं के मोहजाल में फंस कर काम उपभोग में आसक्त वे लोग रौरव नरक में गिरते हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परांगतिम्॥

इस संसार में नरक की ओर ले जाने वाले, सभी पापों के आधार तीन द्वार (बातें) है। १ काम, २ क्रोध व ३ लोभ। इन के द्वारा वशीभूत होने से मनुष्य का नाश होता हैं। इस लिए इन तीनों काम क्रोध व लोभ का जितना भी जल्दी हो सके, परित्याग कर देना चाहिये।

हे कुन्ति पुत्र ! इन तीनों तमोगुण युक्त नारकीय बातों के छोड़ने से मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है और मोक्ष को प्राप्त करता है। (इन में से सब से मुख्य काम है। बस, इसके छोड़ने से ही बाकी दो बातें सहज में छूट जायंगी और आप ब्रह्मचारी बन जायेंगे)।

आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः।

सात्विक लोगों (व ब्रह्मचारियों) का भोजन आयु को देने, सात्विक गुण को पैदा करने, बल, आरोग्य (स्वास्थ्य)

सुख व प्रीति को बढ़ाने वाला, रस युक्त, स्निग्ध व चिरकाल तक स्थिर प्रभाव रखने व हृदय को शक्ति देने वाला होता है।

ब्रह्मचारी के लिये निषिद्ध भोजन :—

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥

पापी (राजस व तामसिक) लोगों का भोजन, चटपटी खट्टी अधिक नमकवाली या खारी, ज्यादा गरम, तीखी, रूखी व शरीर के अन्दर जलन पैदा करने वाली और परिणाम में दुःख शोक व अन्य रोगों को उत्पन्न करने वाली वस्तुओं का होता है।

ऐसे मनुष्यों को देर तक का पड़ा हुआ (भोजन), जिस का रस खराब हो चुका हो, दुर्गन्ध आना प्रारम्भ हो चुकी हो, और जो बासी व दूसरों द्वारा जूठा तथा बुद्धि को कलुषित करने वाला हो, वह ही अच्छा लगता है।

शारीरिक तप क्या है ?:—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

देवता, सत्कर्म्मनिष्ठ, गुरु (माता पिता आचार्य्य तथा अन्य बड़ों) व विद्वानों की पूजा, शुद्धता, सरलता, ब्रह्मचर्य्य और अहिंसा को शारीरिक तप कहते हैं। (ब्रह्मचर्य्य पालन

से आप तपस्वी हो जायेंगे। वैसे भी कहा है 'ब्रह्मचर्य्यं तपः सारम्' ब्रह्मचर्य्य तप का सार है।)

यदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥
विषयेन्द्रियसंयोगात् यदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥

जो सुख आरम्भ में तो विष के समान जान पड़े, परन्तु उसका परिणाम अमृत के समान हो तथा वह सुख जो आत्मा और बुद्धि को प्रसन्नता देने वाला हो, सात्विक सुख कहलाता है। पाठकगण ! देखिये ब्रह्मचर्य्य की गणना भी सात्विक सुख में हो गई। इसका पालन भी पहिले कठिन प्रतीत होता है, परन्तु हो जाने पर अमृत तुल्य सुख देता है।

इन्द्रियों और तज्जन्य विषयों के संयोग से उत्पन्न सुख पहिले तो अमृत के समान सुख कर जान पड़ता है परन्तु उसका परिणाम, विष से भी बुरा प्रभाव रखता है। ऐसे सुख को राजस कहते हैं। (इन्द्रियों के गुलाम हो, वीर्य्य का नाश करने वालों को सचेत हो जाना चाहिये कि वह जिस बात को अमृत मान कर करते हैं; वास्तव में वह भयङ्कर परिणाम वाले दारुण विष से भी बुरी है। विष का सेवन, उस के मीठे होने के कारण करना या विषय भोग व कृत्रिम मैथुन से क्षणिक आनन्द प्राप्त कर सारी आयु उस के दुष्परिणामों को भोगना, कैसी बुद्धिमत्ता है? यह कहने की आवश्यकता नहीं।)

———

ब्रह्मचर्य्य व धर्म्मग्रन्थ

जिस धर्म्मग्रन्थ या इतिहास का पन्ना (वर्का) उलटें, वहीं ब्रह्मचर्य्य का उपदेश दृष्टि गोचर होता है कि 'ब्रह्मचारी रहो'। सभी धर्म्मों की प्रसिद्ध पुस्तकों (वेद, रामायण, महाभारत, बाइबल, कुरान, ग्रन्थ साहिब) में यह शिक्षा दी हुई है।

वेदः—ब्रह्मचर्य्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घ श्मश्रुः। स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान् संगृभ्य मुहुराचरिक्रत्।

तेज से प्रकाशित, कृष्णचर्म्म धारण करने वाला और बड़ी बड़ी दाढ़ी मूछ धारण करने वाला ब्रह्मचारी प्रगति करता है। वह लोगों को एकत्रित कर वारम्बार उन को उत्साह देता है और पूर्व से उत्तर समुद्र तक शीघ्र ही पहुंचता है। (काला मृगचर्म्म या काला कम्बल व मूछ आदि के कहने का अभिप्राय यह है कि जीवन सादा हो, फैशन छूने को भी न आवे।)

ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तं पुरं प्रणयामि वः, तामाविशत, तां प्राविशत। सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु। अथर्व १९-१९-७।

ब्रह्मचारियों से ही ज्ञान की उत्क्रान्ति होती है। उस ज्ञान की नगरी में मैं आप को ले जाता हूं। उस में प्रवेश कीजिये उस में घुस जाइये। वह ज्ञान की नगरी ही आपको सुख और संरक्षण देवे।

रामायण में श्री हनुमान् का चरित्र चित्रण हमें ब्रह्मचर्य्य का ही उपदेश देता है। ब्रह्मचर्य्य की महिमा, शक्ति व विजय स्पष्ट दीखती है। रावण जैसे योद्धा की सभा से अकेले बच कर आना कोई हंसी खेल न था; उस पर भी समुद्र के कुछ भाग को पार करना, सञ्जीवनी बूटी के न मिलने पर पर्वत के उस भाग की सभी जड़ी बूटियां उठा लाना प्रशंसा के योग्य है ; किसी ने लिखा है:—

'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।'

अर्थात् सेवा का धर्म्म इतना गहन है कि योगी लोग भी उसका पार नहीं पा सकते।

श्री लक्ष्मण का जीवन एक आदर्श ब्रह्मचारी का था। भाई की सेवा के लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण किया और बनोपवन में साथ ही साथ फिरते रहे। राम व सीता के सो जाने पर भी पहरा दिया करते थे। (शास्त्र के मत से ब्रह्मचारी सोता हुआ भी जागता रहता है) चौदहवर्ष तक राज्य सुख, पत्नी व माता का त्याग करना कोई सहज बात नहीं है। श्रीराम के पहिचानने को दिए आभूषणों को देख कर लक्ष्मण ने जो उत्तर दिया उसे पढ़ कर आश्चर्य्य होता है। वह कहता है:—

नाहं जानामि केयूरे, नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि, नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

अर्थात् मैं कैयूर नहीं पहचानता और ना ही कुण्डल पहचान सकता हूं। मैं तो सीता के चरणों में प्रतिदिन नमस्कार करने के कारण केवल नूपुर ही पहचान सकता हूं। 'मातृवत्

परदारेषु' या 'परतिय मात समान' का कितना अच्छा उदाहरण है। आज कल की तरह वह लोग अपनी किसी सम्बन्धिनी स्त्री के मुंह की ओर भी, उस के रूप व आभूषणों की शोभा को देखने के लिए, देखा नहीं करते थे। स्त्री-मात्र को देखते ही उनकी दृष्टि नीची हो जाती थी।

इसी प्रकार स्त्री-चरित्रों में सीता, मेघनाद पत्नी व सुलोचना की महत्ता प्रकट होती है। सीता जी ने पति की सेवा करते हुए सहर्ष चौदह वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन किया।

महाभारत में हमें ब्रह्मचर्य्य के आदर्शपालक बहुत से मिलते हैं। उन में सब से उत्तम उदाहरण देवव्रत का है उस ने पिता के सुख को देखते हुए, आजन्म ब्रह्मचर्य्य का व्रत लिया और परशुराम के परम आग्रह करने पर भी अपना व्रत न छोड़ा। अपनी भीषण प्रतिज्ञा पूरी करने के कारण ही इनका नाम भीष्म पड़ा। महाभारत में देवव्रत एक स्थान पर कहते हैं कि पृथिवी अपना गुण अर्थात् गन्ध छोड दे, जल अपनी (तरलता) को तिलाञ्जलि दे दे, सूर्य्य, वायु, इन्द्र व धर्म्मराज भी क्रम से अपना तेज, स्पर्श, विक्रम व धर्म्म त्याग दें, परन्तु मैं जिस ब्रह्मचर्य्य के धर्म को एक बार धारण कर चुका हूं, वह, स्वर्ग का राज्य या उस से भी किसी बड़ी वस्तु के प्राप्त होने पर भी मैं नहीं छोड़ सकताः—

परित्यजेयं त्रैलोक्यं, राज्यं देवेषु वा पुनः।
यद्वाऽप्यधिकमेताभ्यां, न तु सत्यं कदाचन ॥

भगवद्गीता में दी हुई संयम की शिक्षा को पाठक 'श्रीकृष्ण का ब्रह्मचर्य्य उपदेश' प्रकरण में पढ़ चुके हैं।

सभी धर्म्मग्रन्थ हमें काम के वेग से उन्मत न बनने का उपदेश देते हैं। उनके इतने उपदेशों व 'आदर्श ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणियां' प्रकरण में दिए चरित्रों का भाव यही है कि हम लोग काम के वेग से अन्धे न हो जायं, क्योंकि—

न च पश्यति जन्मान्धः, कामान्धो नैव पश्यति।

जिसे प्रकृति ने अन्धा बनाया हुआ है वह, और काम के वेग से अन्धा हुआ मनुष्य, दोनों ही देख नहीं सकते।

बाइबल—पुराने टयूटन लोग इस बात के महत्व को भली प्रकार समझते थे कि छब्बीस वर्ष की अवस्था से पूर्व उन की सन्तान का वीर्य्यपात किसी प्रकार भी न हो, कारण कि पुरुषत्व की पूर्णता इस आयु से पहिले नहीं आती। पुरुषत्व की पूर्णता से पहिले वीर्य्यपात होने देना, उन्हें मनुष्य बनने से रोकना है।

क़ुरान—ल अल्लकुमतत्तकू न।

अर्थ—तुम मत्तकी अर्थात् संयमी बन जावो। पैगम्बर मोहमद भी रोज़ह (इस्लामी व्रत) का वर्णन करते हुए उपदेश करता है कि ईश्वरोपासना की भावना रख कर खान, पान और विषय-भोग से अलग रहो और संयमी बन जावो। वही आगे लिखता है :—

इन्नाहुदल्लाहि हुवलहुदा (७-६-९)

ईश्वर का पथ-प्रदर्शन ही असली प्रदर्शन है।

ग्रन्थ साहिब—गुरु ग्रन्थसाहिब व अन्य-भक्तिपुस्तकों में भी ब्रह्मचर्य्य का उपदेश बहुतायत से पाया जाता है। उस समय प्रत्येक सिक्ख (शिष्य) के लिये ब्रह्मचर्य्य का पालन आवश्यक था; इस के पालन से ही वह एक वीर वा शूरमा हो सकता है। हम गुरु नानक जी के एक दो शब्द लिखते हैं:-

साधो मन का मान त्यागो।

काम, क्रोध, संगत दुर्जन की, ताते अहनिश भागो॥

दूसरा :—

काम-क्रोध-मद लोभ निहारो, छोड़ दे अब सन्त जना।

कहे नानकशाह सुन भगवन्ता, या जग में नहीं कोई अपना॥

आदि आदि

वीर्य्य ही जीवनाधार है—

वैद्यक व धर्म्मग्रन्थों से यह सिद्ध हो चुका है कि बल व जीवन सभी कुछ शुक्र (वीर्य्य) पर निर्भर है। वेद भी यही कहता है कि शुक्र (शुद्ध) स्वयं पवित्र वस्तु है। अब आप का काम है कि उस जीवनाधार वस्तु को शरीर में रख बलवान् बनें।

मनुष्य जीवन का आधारभूत प्राण है, इस कारण मानव जीवन के लिए उनका ठीक रहना आवश्यक है। वह तभी ठीक रह सकते हैं जब कि वीर्य्य की रक्षा हो। वीर्य्य रक्षा से प्राण वश में होते हैं,बल मिलता है। जो जो जीव प्राणसाधन कर सकते हैं, उन में बहुत बल होता है। वह ऐसा काम कर जाते हैं जो कि साहसी से साहसी मनुष्य भी नहीं कर सकता। पर इस प्राणशक्ति के कारणभूत वीर्य्य को ही, यदि हम अपनी छोटी आयु में, नाश करना आरम्भ कर दें तो यह शक्ति हमारे में कैसे आवेगी। हमें यह चाहिये कि जब भी हमारे अन्दर काम-वासना का भाव जागृत हो, तभी हम भी ब्रह्मचारी महादेव की तरह अपने ज्ञान का तीसरा नेत्र खोल दिया करें, जिससे कि काम का अपवित्र चित्र हमारे आगे से दूर हो जाया करे। हमारा तीसरा नेत्र भी कमशक्ति वाला नहीं है, उसमें नाना यम नियमादिक की तेज़ ज्योतियां एकात्रित हैं। यदि हम उस ज्ञान नेत्र को खोल लिया करें, तो कैसे हो सकता है कि काम हमें दबा ले। उस अवस्था में हमारी सहायता के लिए ज्ञान

का अथाह भण्डार चला आयगा। पापी लोगों के हृदय में भी, पापकर्म्म करते समय एक बार ज्ञान का सञ्चार होता है, तो हम, जो कि इस अशुद्ध-विचार को रोकने के लिए प्रयत्न शील हैं, क्यों न रोक सकेंगे। हमारा धर्म्म प्रयत्न करना है, फल भगवान् देंगे। भगवान् कृष्ण गीता में लिखते हैं कि अच्छे कार्य्य का फल सात्विक व निर्म्मल होता है—

कर्म्मणः सुकतस्याहुः सात्विकं निर्म्मलंफलम्।

'अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये,' 'ठीक समय पर कार्य्य करना ही ईश्वर पूजा है' (Do thy duty, 'work is worship'.) आदि कई एक कहावतें दृष्टिगोचर होती हैं। हम भी नियमपूर्वक चलने का प्रयत्न करते हैं, पर ऐसा पूर्ण तरह कर नहीं पाते। किसी अंग्रेज़ लेखक ने लिखा है कि यदि एक युवक यह निश्चय कर ले कि वह जो भी प्रतिज्ञा करेगा, उसका अक्षरशः पालन करेगा। यदि वह किसी को समय देता है तो वह उस समय वहां रहने की बड़ी दृढ़ता, व दूसरे के समय का पूरी तरह विचार रखने हुए पालन करेगा; तो यह निश्चय समझिये कि संसार उसका असीम विश्वास करेगा। बहुत से युवा लोग काम के समय पर खेलते और खेलने के समय पढ़ते देखे जाते हैं; ऐसे लोग कभी प्रसन्न नहीं देखे गये। उनका मन अन्दर ही अन्दर कुढ़ता रहता है। इसी प्रकार हमारे ऋषियों के बनाये समय-विभाग पर न चलने वाले (आयु के पहिले पच्चीस वर्ष पूर्ण ब्रह्मचर्य्य न रखने आदि से) भी सुखी नहीं हो सकते। बालकपन में ही वीर्य्यनाश करने से

समय-विभाग बिगड़ जाता है, और आपदाओं के पहाड़ टूट पड़ते हैं।

हमारे शरीर में १२-१३ वर्ष की आयु तक बहुत परिवर्तन हो आता है, अङ्ग प्रत्यङ्ग पूर्णता की ओर बढ़ते हैं; परन्तु १३-१४ वर्ष से लेकर पच्चीस वर्ष पर्य्यन्त, जहां अङ्ग प्रत्यङ्ग की पूर्णता आती है; वहां पुरुषत्व के लक्षण भी भली प्रकार होने लगते हैं। उस समय शरीर को दृढ़ बनाने वाले किसी पदार्थ की एक बून्द भी खो देना, अपने शरीर को दृढ़ बनाने से रोक देना है। वह समय है जब कि शरीर के प्रत्येक अणु के अन्दर भी हम ऐसी वस्तु का संग्रह करें, जिस से कि हमारा शरीर हमें सौ वर्ष या जितना भी हम जियें, अच्छी तरह काम दे सके, और कितने भी परिश्रम या अन्य कारणों से इस की शक्ति का ह्रास न हो जाय। शरीर की जीवनाधार वस्तु (वीर्य्य) की पालना के लिए लेखक केवल इस लिए जोर नहीं दे रहा कि उस के न रहने से आप आचार भ्रष्ट हो जायेंगे, किन्तु इस लिए कि आप सांसारिक सुखों को देर तक व पूर्णतया न भोग सकेंगे। अपने इतिहास में हमें बहुत से ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिन्हों ने कि दूसरों को लाभ पहुंचाने के लिए इस व्रत का पालन किया और स्वयं भी इस के द्वारा अपना नाम अमर कर गये। जब बहुत से मनुष्य * परोपकार भाव से ही ऐसा व्रत ले सकते थे, तो क्या कारण है कि हम अपने सुख

---

* लक्ष्मण, भीष्म (देवव्रत), स्वामी दयानन्द ने परोपकार भाव मुख्य रख कर ही इस का पालन किया था। लेखक।

के लिए, स्वार्थ के लिए, वीर्य्य, जो कि जीवन का आधार है, की रक्षा न करें, ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन न करें।

जब हम किसी पहाड़ या किसी और छोटी मोटी यात्रा के लिए जाने लगते हैं, तो भी पूरी तैय्यारी करते हैं। बिस्तरा लेते हैं, कोई औषध आदि साथ रखते हैं, यात्रा की प्रत्येक आवश्यक वस्तु चाहे वह बाज़ार में सदा मिल ही क्यों न सकती हो, पहिले से ही बटोर (इकट्ठी) कर रख लेते हैं, कि कहीं कष्ट न हो। जब हम ऐसे बुद्धिमान् हैं कि एक छोटी सी यात्रा के लिए पूरा सामान (कंघी ब्रश, जूते का पालिश, दान्तों का ब्रश व क्रीम, कोई पुस्तक व अन्य खेल आदि) साथ रखते हैं, तो क्या कारण है कि अपनी आयु भर के सुखों को सुरक्षित करने के लिए इस ब्रह्मचर्य्य व्रत की पालना नहीं करते।

आज कल लोग गुणों को चाहते हैं न कि उच्चवंश या कुलीनता को। वह देखना चाहते हैं कि आप क्या हैं, आप में कितना बल है, कितना तेज है? उन्हें और कुछ नहीं चाहियेः—

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः।

अर्थात् संसार में गुणों की ही पूजा होती है, न कि कुलीनता की। आज कल बहुत से नेता इधर उधर आ जाकर अपने असूल्य उपदेशों से हमें पवित्र किया करते हैं, परन्तु जिन का अपना चरित्र ठीक नहीं, उन का कहना कोई नहीं मानता। उन की बात सुन कर या तो हंसी आ जाती है या वह घर पहुंचने तक भूल जाती है। हमारे हृदय पर महात्मा गांधी या उन जैसे एक दो और नेताओं के भाषण का जो प्रभाव होता है वह किसी और का नहीं होता। स्वर्गीय नेताओं में से भी

स्वामी श्रद्धानन्द व लोकमान्य तिलक पर जो श्रद्धा आती थी वह किसी और पर न थी। यह लोग बाल ब्रह्मचारी नहीं थे। इन लोगों के समय में ब्रह्मचर्य्य को समझने वाले बहुत कम थे। फिर भी होश सम्भालते ही ब्रह्मचर्य-पालन का यह प्रभाव है, शरीर की जीवनाधार शक्ति की रक्षा का यह परिणाम है कि दूसरा मनुष्य देखते ही मन्त्र-मुग्ध हो जाय।

धन्वन्तरि, चरक, वाग्भट्ट, सुश्रुत, मनु, नारद, काश्यप प्रभृति आचार्य्यों ने इस के पालन का उपदेश दिया है। प्रायः हम लोगों के इस महा व्रत के पालन न करने का मुख्य कारण हमारा अज्ञान ही रहा है। यदि हमें इसके इतने महत्व, व इसके मार्ग में आने वाले विघ्नों के विषय में ज्ञान करा दिया जाता तो वीर्य्य, जो कि शरीर की जीवनाधार वस्तु है, का इतना अधिक नाश न होता। परन्तु यदि 'सुबह का भूला शाम को घर आ जाय', के अनुसार जितनी जल्दी हो, इसकी रक्षा में तत्पर हो जाना ही सर्वोत्तम है।

ब्रह्मचारी का वास्तविक गुरु (माता)

गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमकी गुरुः ।

सब गुरुओं की गुरु, व सब से उत्तम गुरु, माता होती है । इस में कोई सन्देह नहीं कि बालक या बालिका की प्रारम्भिक शिक्षा व उसके अन्दर सद्भाव पैदा करने में माता का बड़ा हाथ होता है । जैसी माता होगी, वैसी ही सन्तान भी बनेगी । वैद्यक शास्त्र का कथन है कि माता गर्भ में ही बालक को जैसा चाहे वैसा बना सकती है । शिवा जी की माता जीजीबाई व नेपोलियन बोनापार्ट की माता का अपनी अपनी सन्तान पर बहुत प्रभाव था । वाशिंगटन का सत्य-प्रेम भी उसकी माता के कारण ही था । अभिमन्यु ने चक्रव्यूह को तोड़ना गर्भ में सीखा था, जैसी उसकी शिक्षा थी, उसी प्रकार यदि वह ब्रह्मचर्य्य पूर्वक भी रहता, तो युद्ध में उस की विजय निश्चित थी । महात्मा गान्धी ने विदेश में मांस न खाया और पूर्ण सदाचारी रहे; इसका बहुत कुछ श्रेय उनकी माता को है । पाश्चात्य वैज्ञानिकों का कहना है कि गर्भस्थ बच्चे का स्वभाव या प्रकृति उसके गर्भ के पहिले तीन मास में ही बन जाती है । परन्तु आयुर्वेद के अनुसार यह समय और भी अधिक है । बालक की कोमल बुद्धि जो कुछ ग्रहण कर सकती है, वह पीछे अनन्य परिश्रम से भी सिखाया नहीं जा सकता । माता बालक या बालिका को छोटे पौदे की तरह जिस ओर चाहे उसी ओर झुका सकती है कहा है कि:—

उपाध्यायानां दशाचार्य्यः, आचार्य्याणां शतं पिता।
सहस्रन्तु पितॄन्माता, गौरवेणाति रिच्यते ॥

अर्थात् दस अध्यापकों के समान एक आचार्य्य, सौ आचार्य्यों के बराबर एक पिता, और सहस्र पिता के समान एक माता होती है। माता अपनी सन्तति को ब्रह्मचर्य्य के गूढ़ नियम हंसते खेलते समझा सकती है। घर में पहिरने को खड़ाऊं दे, ईश्वर भक्ति सिखाये, व किन किन अङ्गों का आवश्यकता के बिना स्पर्श नहीं करना, यह आज्ञा दे। माता भोजनादिक का क्रम बनाने वाली है, वह अपनी सन्तान को ऐसा आहार ही दे, जिस से वह पूर्ण संयमी बन सकें।

छे-सात या बहुत से घरों में ग्यारह-बारह वर्ष तक बालक का बहुत सा समय माता के साथ ही व्यतीत होता है। माता चाहे तो बालक को आदर्श बना दे, या गली मोहल्ले के लड़कों के साथ, गालियां व अन्य अनुचित बातें सीखने दे। माता बच्चों के विविध प्रकार के प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार से दे, जिससे उनमें ब्रह्मचर्य्य विरोधी बातों से स्वाभाविक घृणा हो जाय। इसी प्रकार बालिकाओं को भी उन में आने वाले परिवर्तनों, मासिक सम्बन्धी बातों को इस भले रूप में बताना चाहिये कि सहसा उस के होने पर वह डर न जांय। अपने अङ्गों के विषय में ज्ञान होना, सदाचार में सहायक होता है और ऐसी सहायता फिर बहुत प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं होती।

यह तभी सम्भव हो सकता है, जब कि माता स्वयं ब्रह्मचारिणी रही हो, ब्रह्मचर्य्य का महत्व जानती हो और अपनी सन्तान को आदर्श व पूर्ण ब्रह्मचारी बनाने की इच्छा रखती

हो। सच्चे ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणियों से ही जाति शक्तिशाली और वीर बनती है तथा देश उन्नति कर सकता है।

पिता व गुरु का कर्त्तव्य

यदि हम ब्रह्मचारी नहीं हैं और हम ने ब्रह्मचर्य्य सम्बन्धी नियमों का पालन नहीं किया तो इस में बहुत कुछ दोष हमारे माता पिता, गुरु व समाज का भी है। इन में से किसी से, या स्कूल में ही इस प्रकार की शिक्षा मिली होती, तो इस के पूर्ण दोषी हम ही होते। परन्तु जब उन में से किसी ने इस ओर, तनिक भी ध्यान नहीं दिया तो एक अनजान बालक के लिये कुछ भी पवित्र या अपवित्र कैसे हो सकता है। वह तो जैसा अर्लबार्नस (Earl Barnes) ने कहा है कि तेरह वर्ष की आयु तक एक जिज्ञासु होता है, उसे सभी कुछ जानने की इच्छा होती है। कोई साधारण सी भी गृहस्थ-सम्बन्धी बात चल रही हो तो वह बालक बालिकाओं के सामने नहीं की जाती; किन्तु उनको उस स्थान से ही उठ कर चले जाने की आज्ञा होती है; जिस से उन के अन्दर कौतूहल बढ़ जाता है, और वह इस बात का ज्ञान चोरी से प्राप्त कर लेते हैं; और शीघ्र ही उस पर आचरण भी प्रारम्भ हो जाता है।

हमारे पिता जी के एक मित्र अपने किशोर बालक को अन्य सभी प्रकार के बालकों से मिलने से इस कारण नहीं रोका करते थे कि आज हो या कल वह इन सभी बातों को जान ही जायगा। उनका यह कथन सत्य था, पर क्या ही अच्छा होता कि वह स्वयं उसे ब्रह्मचर्य्य सम्बन्धी बातें बता देते और फिर, बालकों से मिलने देते। वह जान तो गया, पर

उसके साथियों ने न जाने किस ढंग से, किन भावों से, नमक मिर्च लगा कर बताया होगा, और उनका उस तरुण पर क्या प्रभाव हुआ होगा, यह सब राम ही जानें। माता पिता तो केवल किसी नामधारी बदमाश की सङ्गत से रोका करते हैं। यदि कभी बालक घर आकर यह कह दे कि 'अमुक बालक ने मुझे छेड़ा है', 'कुछ ऐसा वैसा किया है' तो जहां उन्हें दोषी को दण्ड देना चाहिये, वहां उसी ग़रीब व सच्चे बालक को मारना आरम्भ कर देते हैं। 'मार से भूत भी भागता है' के अनुसार परिणाम यह होता है कि यदि फिर कभी वैसी घटना घट जाय, तो वह भूल से भी घर आकर नहीं कहता।

विदेशीय विख्यात लेखक ऐलिस (H. Ellis) का कथन है कि माता पिता के इन बातों को न कहने के दो कारण हैं, एक तो यह कि गृहस्थ या तत् सम्बन्धी बातें इस लिए नहीं कहनी चाहियें कि वह गन्दी बातें हैं। दूसरा, यह बातें इस लिए नहीं कहनी चाहियें कि यह पवित्र हैं। (Sex things must not be talked about because they are "dirty"; sex things must not be talked because they are "sacred".) परन्तु हम यह ठीक समझते हैं कि ब्रह्मचर्य्य के अपूर्व लाभों का चतुरता से वर्णन, बालक बालिकाओं के लिए बहुत लाभदायक होगा। और जो युवक केवल अज्ञान के कारण ही आचार खो बैठते हैं, वह बच जायेंगे। पर दुःख तो यह है कि माता पिता या गुरु स्वयं ही 'इन विषयों पर क्या कुछ कहना या समझना चाहिये' इससे

अपरिचित होते हैं। आचार पर, माता पिता का थोड़ा भी ध्यान कुछ समय में ही बालकों के जीवन को सुधार सकता है। उन्हें बालक बालिकाओं के साथी सङ्गियों के स्वभाव व आचरण की परीक्षा करते रहना चाहिये। कभी कभी अचानक जाकर (Surprise Visit) देखना चाहिये कि उनकी होनहार सन्तान अकेले बैठ क्या करती रहती है। इस के अतिरिक्त उन्हें अपनी सन्तति में सच्चे स्नेह का भाव भरना चाहिये जिस से कि प्रत्येक बालक यह समझने लगे कि संसार की सभी स्त्रियों में मातृत्व या बहिन-पन के सिवाय और कुछ नहीं है। इसी प्रकार लड़कियों के हृदय में भी ऐसा ही विचार रहना चाहिये कि सभी पुरुष पिता या भाई हैं। इस प्रकार यदि ठीक ठीक समझा व समझाया जावे, तो भी बुराइयां बहुत शीघ्र दूर हो जांयगी।

कई एक घरों में माता पिता, बालक-बालिकाओं को खूब पैसे देते हैं। माता, पिता से छिपा कर कुछ पैसे, और भी दे देती है। वह न भी दे, तो सन्तान ही कुछ धमका या दो आंसू दिखा कर ले लेती है। पर कई एक माता-पिता बालक के लाख अनुनय-विनय करने पर भी एक पैसा तक नहीं देते। जब उन का बालक या बालिका, किसी दूसरे लड़के लड़की को पैसा खर्च करते देखता है, तो उसका भी स्वभावतः खाने पीने को दिल कर आता है। कई बार केवल इस कारण से ही कि उन्हें पैसे मिल जांय, वह अपना आचार खराब कर बैठते हैं। आवश्यकता से अधिक पैसे मिलने पर उसके अपव्यय के कारण ऐसा होता है।

माता पिता संयम के विषय में, अपनी सन्तान को शिक्षा देने से न झिझकें। इस की पुष्टि में डा० ट्राल एम० डी० का कहना है—"हज़ारों युवक-युवतियां ऐसे हैं, जिन्हों ने अज्ञानवश अपने स्वास्थ्य का नाश कर डाला है।........वह ऐसा भयङ्कर नाश न करते यदि उन के माता पिता या सद् मित्र, उनके बढ़ने की अवस्था के पहिले ही, उनको इस विषय की शिक्षा दे देते, जिस का ज्ञान प्रत्येक बालक के लिए आवश्यक है।" प्राचीन समय में ब्रह्मचर्य्य पालन के नियम, अष्ट मैथुन से आत्मरक्षण के लिए आवश्यक बातें, ब्रह्मचारी को उस के गुरु, उस की आठ-दस वर्ष की आयु में ही बता देते थे, जिस से यह कार्य्य सहल हो जाता था।

गुरु या आचार्य्य की प्रथा ही कम होती जाती है। ऋषि या गुरुकुल में भी शास्त्रोक्त आचार्य्य ढूंडने पर ही मिलेंगे! आज कल के गुरु का कर्त्तव्य इतने में ही समाप्त है कि उन्होंने पुस्तक पढ़ा कर अपना निश्चित एक, डेढ़ घण्टा पूरा किया और चले गये। लड़का आचार में ठीक रहे या न रहे, इस की उन्हें चिन्ता नहीं। वेद में आचार्य्य कैसा हो, लिखा है:—

ब्रह्मचर्य्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
आचार्य्यो ब्रह्मचर्य्येण ब्रह्मचारिणमिच्छति॥

राजा सब लोगों से ब्रह्मचर्य्य रूपी तप का पालन करा के राष्ट्र का विशेष रक्षण करता है। आचार्य्य भी ऐसे ब्रह्मचारी की इच्छा करता है, जो पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का पालन करता हो।

आचार्य्यो ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापति विराजति विराडिन्द्रो भवद्वशी ॥

आचार्य्य पूर्ण ब्रह्मचारी होते थे, प्रजापालक होते थे, और और संयमी राजा ही इन्द्र कहलाते थे, आचार्य्य स्वयं मर्य्यादा से बाहिर न जाते थे। वह अपने शिष्य की त्रुटि को अपनी त्रुटि समझते थे। इन में यजुर्वेद के अध्याय २३ मंत्र ४२ में वर्णित गुण होते थे।

घोड़े को चलना व चलाने वाले को चलाना, सिखाया जाता है, जिस से वह दोनों, अपना अपना कार्य्य ठीक कर सकें। उपनिषद् में शरीर को रथ की उपमा दी है, इन्द्रिय घोड़े माने हैं, मन को सारथी व आत्मा को स्वामी कहा है। परन्तु इन दोनों को ठीक मार्ग पर चलाने के लिए कुछ समय तक एक निरीक्षक की आवश्यकता होती है, और वह निरीक्षक गुरु ही हो सकता है।

गुरु या आचार्य्य का काम, प्रेम से शिष्य के हृदय को अपना लेना होता है। शिष्य को गुरु से भय न होने पर, वह उस से कोई भी बात छिपा न रक्खेगा। उन दोनों के एक सूत्र में बन्ध जाने पर ही शिष्य, गुरु का प्रतिपद पर अनुकरण कर सकता है। शिष्य को शुद्ध भाव से गुरु का कथन समझ कर, उस पर चलना चाहिये। शिष्य के अपने भाव ठीक न होने से वह कुछ का कुछ समझता रहेगा। एक कथा है कि एक पिञ्जरे में बन्द तोता मधुरस्वर से हरिभजन कर रहा था। पास से एक रामभक्त निकला, उस ने वह शब्द सुन कर कहा, 'तोता कैसा अच्छा है सीताराम सीताराम' कह रहा है। थोड़ी

देर में कृष्णभक्त उधर आया, उस ने, उसी हरिभजन में 'राधाकृष्ण, राधाकृष्ण' की ध्वनि पाई। कुछ और समय बीतने पर अपनी धुन में मस्त एक बनियां आया, उस ने उस तोते को बोलते सुन कर समझा कि 'पूरा तोल' कह रहा है। इस से सिद्ध होता है कि जैसा अपना भाव होगा, वैसा ही हम दूसरे के कथन को समझेंगें।

आज कल संयम-सम्बन्धी शिक्षा कैसे दी जाय, इस विषय में जर्मनी की फ्राउ मारिया लिशन्यूस्का (Frau Maria Lischnewska) का मत है कि संयम शिक्षा देने का सर्वोत्तम प्रकार, केवल स्कूल ही, एक मात्र उपाय है। यही एक मार्ग है कि जहां हम घर व संसार में होने वाली बुराइयों के बुरे प्रभाव को रोक सकते हैं। (The school is not only the best way of introducing sexual hygiene, but the only possible way, since through this channel alone is it possible to employ an antidote to the evil influences of the home and the world.)

बालक की बुद्धि को देखते हुए माता, पिता व गुरु, उसे इस विषय की बातें आठ से १२-१३ वर्ष तक की आयु में समझा सकते हैं। उस के मन में उस समय इन बातों के जानने की अत्यन्त उत्सुकता होती है। इस लिए उन्हें ऐसी बातों का ज्ञान करा देना अच्छा होता है। इन दिनों में मैंने बहुत से बालकों में ऐसी उत्सुकता देखी है, परन्तु उसके लिए पहले उन की झूठी, पर स्वाभाविक लज्जा हटानी होती है, उन्हें विश्वास दिलाना होता है, और फिर एक अद्भुत प्रश्न पूछे

जाने पर उन का उत्तर भी सीधा, स्पष्टतया व विचार पूर्वक देना होता है। इस के लिए गुरु में, मूत्र मार्ग आदि अङ्गों की शरीर रचना (फिसियालोजी) का ज्ञान होना चाहिये। जो जो रोग या बुरे परिणाम होते हों, उन का पता रहना चाहिये। इस के लिए बहुत बुद्धिमत्ता की आवश्यकता है। माता पिता व गुरु को तीन, छे या अधिक से अधिक बारह मास तो संयम के नियम पालन कराने में विघ्न बाधाएं उपस्थित हो सकती हैं; परन्तु ज्ञान व आयु की वृद्धि के साथ यह बातें स्वयं ही ठीक हो जायंगीं।

हमें ब्रह्मचारी बनाने के लिए माता पिता व गुरु का पूर्ण सहयोग होना आवश्यक है। यदि व्यवस्थापिका सभा (एसेम्बली) भी इस ओर कुछ विचार करती, तो कहना ही क्या था, परन्तु अभी यह दूर की बात दीखती है।

Excellent.

आदर्श ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणियां

आचारः प्रथमोधर्मो नृणां श्रेयस्करो महान् ।

इह लोके पराकीर्तिः परत्र परमं सुखम् ।।

संसार में मनुष्य का सर्वप्रथम धर्म व जिस से उसका बहुत भला हो, आचार है। इस से न केवल इस लोक में ही कीर्ति होती है, किन्तु परलोक में भी परम सुख प्राप्त होता है।

हम पहिले भी लिख आये हैं कि ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते हैं; एक तो नैष्ठिक जो आजन्म ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन करते हैं। दूसरे उपकुर्वाण, जो अपनी आयु के पहिले भाग में या होश सम्भालते ही, यह व्रत लेते हैं। दो नैष्ठिक ब्रह्मचारियों हनुमान व भीष्म का वर्णन हम ब्रह्मचर्य्य व धर्म्मग्रन्थ प्रकरण में कर आये हैं। नीचे हम दोनों प्रकार के ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणियों का संक्षिप्त वर्णन देते हैं :—

नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द :—जब यह मूलशङ्कर थे (स्वामी जी का बचपन का नाम), तभी उन्हें अपने सम्बन्धियों की मृत्यु के कारण संसार से वैराग्य हो आया। शिवरात्रि की घटना ने उनका जीवन ही पलट दिया। आप इधर उधर घूमते फिरते, किसी प्रकार स्वामी विरजानन्द के पास मथुरा पहुंच गये, और वहां सभी वेद विद्याओं में पारङ्गत हुए। विद्या-समाप्ति पर इन के गुरू ने गुरुदक्षिणा के रूप में इन से आजन्म ब्रह्मचारी रह, वेदप्रचार व वैदिक सभ्यता के पुनर्जीवित करने की प्रतिज्ञा चाही। स्वामी जी ने प्रतिज्ञा की, और आप ने पूर्ण ब्रह्मचर्य्य द्वारा इस प्रतिज्ञा को ऐसा निभाया, कि सभी को आश्चर्य्य होता है।

एक बार यह एक रियासत में गये। वहां एक महाराजा की चार घोड़ों की गाड़ी जा रही थी। स्वामी जी ने उसे पीछे से पकड़ लिया और वह बहुत प्रयत्न करने पर भी चल न सकी। कोचवान यह समझ कर कर कि घोड़े अड़ गये है, उन्हें खूब चाबुक लगाता रहा, पर जब महाराज ने पीछे घूम कर देखा तो स्वामी जी को पाया। इनकी शारीरिक शक्ति को देख कर वह मुग्ध हो गया और उनका भक्त बन गया। इनके ब्रह्मचर्य्य की एक और भी दन्त-कथा प्रचलित है कि एक बार रात्रि के समय एक अति सुन्दरी स्त्री इनकी कुटिया में आई। इनके पूछने पर, माता! क्या आज्ञा है? उस ने कहा, देखो! तुम परम शक्ति-शाली व तेजवान् हो और मैं परम सौन्दर्य्यवती हूं। यदि तुम्हारे द्वारा मेरे में गर्भ हो तो वह संसार में इन सभी गुणों में अद्वितीय होगा। स्वामी जी ने उत्तर दिया 'माता! तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकृत है। हम तुम्हें जैसा पुत्र तुम चाहती हो, वैसा ही देते हैं। आज से हम तुम्हारे पुत्र हुए और तुम हमारी माता हुई।' यह है ब्रह्मचर्य्य का प्रताप। ऐसे सद्विचारों से ही वह नैष्ठिक बन सकते थे। इन के सततोद्योग व कार्य्यनिरतता के विषय में हम आगे लिखेंगे। इतने प्रबल विरोध व पत्थर आदि के चलने पर भी भारत में वेदों का डङ्का बजाना, एक साधारण व्यक्ति का कर्त्तव्य न था। यह सब ब्रह्मचर्य्य से ही सम्भावित था।

इन दिनों नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहीं ढूंडे पर ही मिलते हैं। कहने को तो जिस ने विवाह न किया हो या न हो सका हो;

वही अपने आप को ब्रह्मचारी कह देता है। हम यहां दो नैष्ठिक ब्रह्मचारियों, स्वामी लक्ष्मीराम व प्रो० माणिकराव का संक्षिप्त विवर्ण देते हैं।

स्वामी लक्ष्मीराम आयुर्वेदमार्तण्डः :—आप के नाम से भारत का सभी वैद्य समुदाय परिचित है। आप अपनी अपूर्व योग्यता के कारण छोटी आयु में ही, जयपुर संस्कृत कालेज के आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष व दो अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलनों के प्रधान रह चुके हैं। आपने अपनी छोटी आयु में माता पिता को छोड़, वैराग्य का आश्रय लिया और दादूपन्थी साधु होगये। आपने लाखों रुपये कमाकर, व सभी सांसारिक सुखों के विद्यमान होते हुए भी ब्रह्मचर्य्य व्रत का बड़ी दृढ़ता से पालन किया। उपवास, शुद्धता, ईशप्रार्थना, स्वाध्याय, सात्विक भोजन, सादगी, सत्सङ्ग आदि सत् नियमों का पालन भी इन के ब्रह्मचर्य्य प्रेम व महानता को बताते है। आप अपनी लगभग ६७ वर्ष की आयु में भी यौवन सम्भव तेज से युक्त दीखते हैं। आप अपने बडे भारी चिकित्सा कार्य (प्रैक्टिस) को छोड़ कर व प्रायशः अपनी सारी सम्पत्ति को दान कर जयपुर में अपने एक बागीचे में हरिभजन करते हैं।

प्रोफेसर माणिकरावः—आप के दर्शन, जब हम विदेश से वापिस लौटे तब, बड़ौदा के प्रतिष्ठित राजवैद्य श्री चुन्नी लाल जी भाई के साथ, किये थे। आप की कीर्ति पहिले ही कर्ण-गोचर हो चुकी थी। दर्शन करने पर देखा कि ब्रह्मचर्य्य का तेज आप की इतनी आयु होने पर भी देदीप्यमान है व शरीर सुगठित तथा लम्बे कद का है। आप ने हमें जुम्माक्षादा

व्यायामशाला व छोटा सा शस्त्रागार दिखाया, जिस में अत्यन्त पुरातन राजा महाराजाओं, नवाबों, व सुलतानों की तलवारें थीं। बहुत से शस्त्र छत्रपति शिवाजी की स्मृति कराते थे। व्यायामशाला के चारों ओर अनेक ब्रह्मचारियों के चित्र लगे हैं, जिन्हें देख चित्त प्रसन्न होता है।

अब हम ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख करते हैं जिन्हों ने जीवन के प्रथम भाग में या ब्रह्मचर्य्य का महत्त्व जानने के अनन्तर इस का पालन किया है।

स्वामी श्रद्धानन्दः—३२-३४ वर्ष की आयु में लाला मुंशी राम (स्वामी जी का संन्यास से पहिला नाम) के सिर में आध घंटा पढ़ते ही चक्कर आया करते थे। उन दिनों शराब का दौर-दौरा होने के कारण, इन्हें भी वारुणी देवी ने न छोड़ा था, लोग उन की जवानी पर हंसते थे; पर विधाता ने इन से बहुत काम लेना था, इन के हाथों, बहुतों को ब्रह्मचर्य्य की दीक्षा दिलानी थी। यह अपनी स्त्री की मृत्यु के अनन्तर कुछ मित्रों की सम्मति से एक दम सब प्रकार की बातें त्याग, पूर्ण ब्रह्मचारी बन बैठे। यहां तक कि गुरुकुल में आने से सत्रह वर्ष पहिले, उन्हों ने मिर्च मसाले खाना छोड़ दिया था, और सादा से सादा आहार लेते थे। अवस्था एकदम बदल गई। आध घंटा काम न कर सकने वाला, सत्रह-अट्ठारह घंटे काम करने लग गया; जिस की जवानी पर लोगों को हंसी आती थी, वह बड़े बड़े पहलवानों सा मजबूत व शक्तिशाली हो गया। उन्हों ने न केवल आर्य्य समाज व गुरुकुल की सेवा की, किंतु सिक्खों को भी, उन के अकाली आंदोलन के समय अद्भुत

सहायता दी। वह कांग्रेस के प्राणभूत हो कर रहे, अमृतसर कांग्रेस की सफलता, उन्हीं के श्रम का परिणाम थी। शुद्धि आंदोलन के सर्वेसर्वा वही थे। इतनी आयु के हो जाने पर भी उन में अपूर्व बल था, अद्भुत शक्ति थी, आश्चर्य्यजनक तेज था। शुद्धि आंदोलन के कारण यदि उन की हत्या न की गई होती, तो न जाने वह इस संसार में और क्या क्या काम कर जाते।

जब ऐसे मनुष्य, जिन्हें अपने जीवन के पहिले भाग में ब्रह्मचर्य्य किस वस्तु का नाम है, यह भी पता न था, वह भी उस के पालन के अनन्तर ऐसा काम तथा यश उपार्जन कर गये; तब भला यदि हम इस छोटी आयु में इस महाव्रत के पालन की प्रतिज्ञा कर लें, तो वैसे क्यों न बन जायेंगे।

महात्मा गांधीः—वह जब अफ्रीका में थे, तब उन्हें सन्तति-निग्रह की आवश्यकता प्रतीत हुई और इस के लिये कृत्रिम उपायों की सहायता न ले कर उन्हों ने अपने मित्र रामचन्द्र भाई के सत्य परामर्श का अनुसरण किया। चाहे महात्मा जी चालीस वर्ष तक उपरिलिखित उपायों के पक्षपाती थे, परन्तु थोड़े ही समय में विदेशीय सभ्यता के परिणाम स्वरूप उत्पन्न यह विचार बदल गये।

गांधी जी ने मिस्टर ग्लैडस्टन के प्रति उन की स्त्री के अनन्य प्रेम की बात अपने मित्र को सुनाई कि वह उन्हें हाउस आफ कामन्स में स्वयं चाय बना कर पिलाया करती थी। इसके उत्तर में रामचन्द्र भाई ने निम्न शब्द कहे, जिन से कि महात्मा जी के अन्दर ब्रह्मचर्य्य का झुकाव प्रारम्भ हुआ।

"इस में आप को कौन सी बात महत्वपूर्ण जान पड़ती है, मिसिज़ ग्लैडस्टन का पत्नीभाव या सेवाभाव, यदि वे मिस्टर ग्लैडस्टन की बहिन होती तो! या उन की वफादार नौकर होती और फिर भी उसी प्रेम से चाय पिलाती तो! ऐसी बहिनें या नौकरानियां, हमें क्या आज न मिलेंगी? और नारी जाति के बदले ऐसा प्रेम यदि मनुष्यों में देखा होता, तो क्या आपको इतना हर्ष व आश्चर्य न होता! इस बात पर विचार कीजियेगा।"

महात्मा जी ने इसे विचारा और खूब विचारा। केवल विचारा ही नहीं किंतु इस पर आचरण भी किया। यह जो हम उनका, इतना माहात्म्य, तप, साहस, शक्ति, बल व ईश्वर-भक्ति देखते हैं यह सब उन के अट्ठाईस वर्ष के ब्रह्मचर्य्य का (१६०६ से) का ही प्रताप है। १९०१ से उन्हों ने इस व्रत का पालन प्रारम्भ किया। पांच वर्ष का समय उन्हें इसके मार्ग में आने वाले, नाना विघ्नों के हटाने में लगा। उनका विवाह बालकपन में हो गया था, परन्तु ज़रा विचार आते ही उन्हों ने अपने आपको सम्भाला, अफ्रीका के प्रवासी भाइयों को सम्भाला व यहां तक कि अब हमें (भारतीयों को), सम्भाल रक्खा है।

महात्मा जी जब पहिली बार थोड़े समय तक ब्रह्मचर्य्य से रहे, तभी उन्हें यह ज्ञान हो गया कि यह व्रत बन्धन नहीं, किंतु स्वतन्त्रता का द्वार है। इस से सफलता मिलती है, दृढ़ता आती है, आत्मविश्वास उत्पन्न होता है। उन्हें अनुभव हुआ कि इस व्रत की पालना के लिए वैराग्य की भी बहुत

आवश्यकता है 'त्याग न टिके रे वैराग विना'। इस के साथ ही हमें जीभ और पापी पेट को भी काबू रखना पड़ता है। हम देखते हैं कि इन बातों को उन्हों ने स्वयं आवश्यकता से अधिक निभाया है, जीभ का संयम तो उन के भोजन से पता चलाता है:—

१—वह बहुत थोड़ा अन्न या प्रायः अन्न नहीं लेते।

२—उन के भोजन में चीनी (खांड), नमक मिर्च मसाला या खटाई नहीं होतीं।

३—वह केवल जीवित रहने के लिए खाते हैं, न कि खाने के लिए जीते हैं। आश्चर्य होता है कि वह कितना थोड़ा आहार लेते हैं। हरिजन आंदोलन के दिनों में वह चौबीस घण्टे में तीन पाव बकरी का दूध, आध सेर के लगभग घिया या ऐसी ही कोई उबली सब्जी, अंगूर, आम, व पानी में थोड़ा शहद मिला कर लेते थे। (सब्जी गलाने के लिए उस में थोड़ा सोडा बाई कार्ब डाला जाता था।) यह तो हुआ उन का इन्द्रिय दमन, परन्तु उनके उपवासों को देख कर अचम्भा होता है कि जो व्यक्ति पहिले ही हाड्डियों का पञ्जरमात्र है, वह २१-२१ दिन का उपवास कैसे कर सकता है। फिर उन का भोजन भी ऐसा है, जिसे कि हम उपवास के दिन खाते हुए भी नहीं सकुचाते।

गांधी जी वीर्य्य को पारस-मणि कहते हैं, यदि हम उसे अपने पास रहने दें, तो निश्चय ही सोना हो जांय। महात्मा जी ने रक्खा है और वह सोना हो गये; उसी सोने को अन्यान्य व्रतोंने कुन्दन बना दिया है। यदि वह पारस-

मणि देर से ब्रचह्मर्य्य धारण करने पर भी इतना उच्च कर सकती है, तो वह हमें वैसा क्यों न बना देगी। इस पारस-मणि के हमारे पास होने से ही हमें स्वास्थ्य, स्वार्थ व परमार्थ, सच्ची शक्ति और उत्साह की प्राप्ति हो सकती है। यही बातें, हमें महात्मा जी के जीवन से ग्रहण करनी चाहियें। वह लिखते हैं:—

ब्रह्मचारी की शक्ति के आगे सारा संसार मस्तक झुकायेगा। उस का प्रभाव मुकुटधारी राजा की अपेक्षा कहीं अधिक पड़ेगा।'

आदर्श ब्रह्मचारिणियां

प्राचीन काल में बहुत सी स्त्रियां ब्रह्मचर्य्य पूर्वक विद्याध्ययन व जीवन व्यतीत किया करती थीं। शरीरिक बल व विद्वत्ता के अन्दर बड़े बड़े व्यक्ति भी उन से लोहा नहीं ले सकते थे। वास्तव में ऐसी ही स्त्रियां, स्त्रियां थीं व हैं। ऐसी स्त्रियों के जीवन का उल्लेख बहुत कम मिलता है। कारण कि वह, विवाह से पूर्व ब्रह्मचर्य्य धारण करती थीं और विवाह होने पर सती हो जाती थीं। अपाला, घोषा मैत्रेयी, देव हूति व अनुसूया आदि देवियां ऐसी ही थीं। अभी कुछ समय पूर्व, हरियाना की बाल-विधवा माई भगवती व कन्या महाविद्यालय जालन्धर की श्रीमती सावित्री देवी का जीवन भी ब्रह्मचर्य्य पूर्वक व्यतीत हुआ है। इसी प्रकार अन्य बहुत सी देवियां नाना संस्थाओं व अन्य स्थानों पर ब्रह्मचर्य्य व्रत को दृढ़ता से निभा रही हैं।

सुलभाः—इस के विषय में निम्न श्लोक आता है कि यह क्षत्रिय कुल में उत्पन्न कन्या, अकेली, मुनियों के समान ब्रह्म-

चर्य्य पूर्वक जीवन व्यतीत करती हुई, सभी धर्म्म कार्य्य, विनीत भाव से किया करती थी।

साऽहं तस्मिन् कुले जाता, भर्तरि असति मद्विधे।
विनीता मोक्ष धर्म्मेषु, चराम्येका मुनिव्रतम्॥

जोन आफ आर्क

इस फ्रांस देशीय ललना ने बालकपन में ही एक स्वप्न या दैवी-शक्ति के कथनानुसार अपने देश को आजन्म ब्रह्मचारी रह, स्वतन्त्र करने की प्रतिज्ञा कर ली। उस समय फ्रांस पर अंगरेजों का स्वामित्व था। स्त्रियों को असहाय व अबला कहा जाता था, परन्तु जोन ब्रह्मचर्य्य के प्रभाव से सबला बन चुकी थी। उस ने थोड़े ही समय के उद्योग से ग्रामों व उस के बाद शहरों से सेना एकत्रित की, और एक एक कर के फ्रांसीसी प्रान्तों पर अपना आधिपत्य जमाना प्रारम्भ कर दिया। वह पुरुषों जैसे वस्त्र पहिरती व घोड़े पर सवार होती थी, और स्वयं रणक्षेत्र में उतर, शत्रुओं से लोहा लेती थी। जिस भाग में वह स्वयं होती, उस फौज की विजय सब से पूर्व होती थी। कुछ ही दिनों में उस ने सारा देश स्वतन्त्र करा लिया। इस वीराङ्गना की वीरता उस के विरोधियों से देखी न गई। वह सभी पुराने विचार के थे। उन्होंने यह प्रसिद्ध कर दिया कि यह तो स्त्री के रूप में कोई चुड़ेल या डायन है, पुरुषों के से वस्त्र पहिरती है। अन्त में उस पर मुकदमा चलाया गया और उन धर्म्मान्ध लोगों ने उसे जीते जला दिये जाने का, उस की सेवा के बदले पारितोषिक (इनाम)

दिया। वह स्वयं पैदल चल कर, जिस स्थान पर उसे जलाया जाना था, पहुंची, और बड़ी निर्भीकता से चिता पर चढ़, जल गई।

देवियो! ब्रह्मचर्य्य का ऐसा ही प्रताप है। उस के पालन करने से मृत्यु से भी भय नहीं रहता। देवी जोन ने देश व स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों की बलि दे दी।

फ्लोरेंस नाइटिङ्गेल

यह देवी इंगलैण्ड की रहने वाली व नर्स (रोगी-परिचारिका) प्रथा की जन्मदात्री थी। एक बार बाल्यावस्था में इस के रोगी होने पर, उस समय के नियम के अनुसार इस के लिए, जैसे हमारे यहां नायन आदि स्त्रियां होती हैं, वैसी ही एक स्त्री सेवा करने को रख दी गई। वह स्त्री बड़ी मोटी थी। जब कभी भी फ्लोरेंस को पानी आदि की आवश्यकता होने पर उसे जगाना पड़ता, तो वह बहुत नाराज होती। फ्लोरेंस को यह बहुत बुरा लगा। स्वस्थ होने पर उस ने बहुत से रोगियों के घर आना जाना प्रारम्भ किया और सब जगह वैसा ही व्यवहार देखा। यह देख उस के हृदय में एक अपूर्व निश्चय हो आया कि मैं सारी आयु ब्रह्मचारिणी रह; दीन, निर्धन रोगियों की सेवा करूंगी और अपने किये, उन्हें, कोई कष्ट होने न दूंगी। उस ने अपने निश्चय के अनुसार कार्य्य प्रारम्भ कर दिया। वह प्रत्येक रोगी के लिए सुन्दर सुन्दर फूल ले जाती थी, उस का बिस्तरा व कमरा ठीक कर आती थी। उस की बातों में ऐसा आश्वासन

भरा होता था कि मानों आधा रोग ही दूर हो गया हो। उस के इस सत्कार्य्य से लोगों की सहानुभूति उस की ओर खिच आई। उस ने इस कार्य्य के लिए एक संस्था बना दी, और बहुत से स्थानों पर जा जा कर ऐसी संस्थाएं बनाने के लिए प्रोत्साहन दिया।

कुछ दिनों में ही इङ्गलैण्ड व एक दूसरे देश के बीच युद्ध छिड़ गया। इस देवी ने अपने आप को आहतों व घायलों की सेवा के लिए सौंप दिया। युद्धस्थल के समीप पहुंच कर इस ने व इस की साथी-सेविकाओं ने, इस प्रेम व परिश्रम से सेवा की कि इस की प्रसिद्धि दूर दूर तक फैल गई। कोई भी घायल या रोगी ऐसा न होता था, जिस से कि वह एक बार स्वयं उस का हाल न पूछ लेती हो। इस ने नर्सों के लिए एक विशेष पहिरावा नियत किया, और बहुत से नियम बना दिये। एक बार अधिक परिश्रम के कारण फ़्लोरेंस बीमार हो गई। किसी ने हंस कर इस से पूछा, जब तुम्हीं बीमार हो, तब दूसरों का क्या होगा? फ़्लोरेंस नाइटिङ्गेल ने उत्तर दिया, मुझे अभी शिक्षा की और आवश्यकता थी। भगवान् ने मुझे यह अवसर दिया है कि इस बीमारी की दशा में, अपनी सेवा की कमियां जान कर, उन्हें दूर सकूं।

ब्रह्मचर्य्य के बिना सेवा तो क्या, कोई भी कार्य्य होना असम्भव है।

मीराबाई (मिस स्लेड)

मीराबाई विदेश के एक एडमिरल (जहाजी सेनापति) की लड़की हैं। वह योरोपीय फैशन व सभ्यता में बड़े ठाट बाट से रहा करती थीं। महात्मा गान्धी का नाम इन्होंने, जब इन के पिता भारत में कार्य्य करते थे, तब सुना हुआ था। यह भारत की सैर व उन के दर्शन करने आईं, और कुछ समय उन के साबरमती आश्रम में ठहरीं। वहां इन के जीवन में ऐसा अद्भुत परिवर्तन हुआ कि देख कर, आश्चर्य्य से दान्तों तले अंगुली दबानी पड़ती है। इन को भारतीय सभ्यता, सादगी और जीवन की पवित्रता ऐसी पसन्द आई कि आपने वापिस लौटने का विचार छोड़ दिया, और ब्रह्मचर्य्य की दीक्षा लेकर चर्खा कातना, व तकली चलाना प्रारम्भ कर दिया। यह गीता आदि पुस्तकों का स्वाध्याय करती हैं और इन का उच्चारण बहुत शुद्ध है। आप ने ब्रह्मचर्य्य महाव्रत को पूर्णतया पालन करने में कोई कसर उठा नहीं रक्खा। आप एक खादी का कुर्ता व धोती पहिरती हैं, भोजन निरामिष व बिना मसाले का लेती हैं। आप, स्त्री के सर्वोत्तम भूषण, सिर के बाल भी मैशीन से सब के सब कटवा देती हैं। भारत के प्रति इंगलैण्ड, अमेरिका आदि देशों में सद्विचार फैलाने के लिए जा चुकी हैं। इन का ब्रह्मचर्य्य प्रेम प्रशंसनीय है।

——

वीर्य्यरक्षा के सन्नियम

अब करुणाकर कीजिए सोई ।

जा विध मोर परम हित होई ॥

पाठकगण ! ब्रह्मचर्य्य के विषय में आवश्यक बातें आप ने पढ़ लीं, अब हम वीर्य्यरक्षा किन किन नियमों के पालन से सरलता-पूर्वक हो सकती है, लिखते हैं। यह नियम, नवीन युग के विद्यार्थियों, युवाओं व सांसारिकों के लिए दिये गये हैं। प्राचीन समय के ब्रह्मचारियों या जनता के लिए नहीं। इन का उल्लेख करते समय यह भी विचार रक्खा गया है कि यह ऐसे हों, जिन को हमारे नवयुवक व अन्य व्यक्ति सहज में ही कार्य्यरूप में ला सकें। दिनचर्य्या, व अन्य आहार-सम्बन्धी नियम भी अपने वैद्य होने के कारण वैद्यक व डाक्टरी मतानुसार ही दिये हैं। हम ने कई एक बातें अत्यधिक प्रचलित होने पर भी, और उन के जन-साधारण द्वारा अच्छा समझें जाने पर भी, यदि वह वैद्यक-शास्त्र के अनुसार हानिकर व विरुद्ध हैं, तो नहीं दिया। चरक की आज्ञा है :—

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते ।

अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत् ॥

हमें अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार वह वह वस्तुएं नित्य सेवन करनी चाहियें, जिन से कि हमारा स्वास्थ्य बनता है, और जो हमारे अन्दर अविद्यमान विकारों को उत्पन्न

स्वास्थ्य का मूलमन्त्र (ब्रह्मचर्य्य) :—

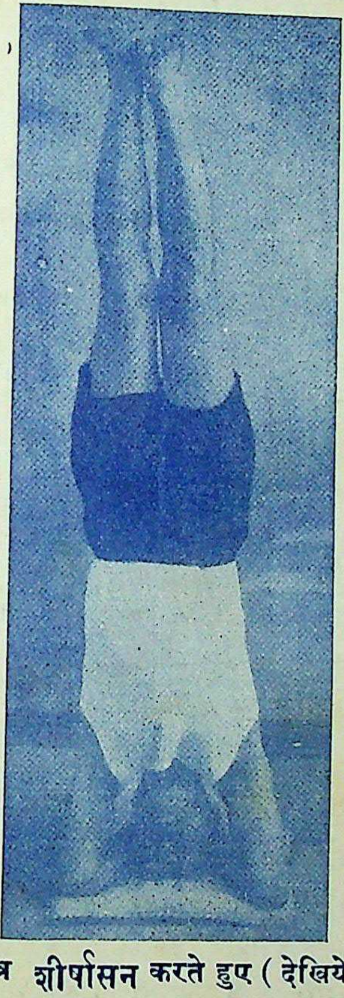

लेखक का चित्र शीर्षासन करते हुए (देखिये पृष्ठ १३०)

करने वाली नहीं हैं। इस लिए ब्रह्मचर्य्यमय जीवन बिताने की इच्छा वाले मनुष्य को चाहिये कि वह शरीर में काम-विकार की होने वाली प्रवृत्ति को रोकता रहे। जो व्यक्ति इस विकार को स्वप्न में भी अपने पास फटकने नहीं देते, वह मनुष्य, मनुष्य नहीं, देवता हैं।

नियमितता

I Organize my time to the minute. M. Harriot.

'मैं अपना प्रत्येक कार्य्य उस के लिए नियुक्त मिनट पर करता हूं'; यह शब्द एम हैरियट भूतपूर्व राष्ट्रपति फ्रांस के हैं। वह एक साधारण से व्यक्ति थे और कहीं पढ़ाया करते थे; परन्तु अपने इसी नियम के पालन से वह, फ्रांस के सब से बड़े व्यक्ति अर्थात् राष्ट्रपति हो गये।

स्वस्तिपन्थामनुचरेम सूर्य्याचन्द्रमसाविव। ऋ० ५-५१-१५

May we ever unswervingly follow the path of duty as do the Sun and the Moon.

हम अपने कर्त्तव्यपथ पर उसी प्रकार बेरोक टोक चलें, जिस प्रकार सूर्य्य व चन्द्रमा अपना अपना कार्य्य करते हैं। वास्तव में यह नियम सर्वोत्तम है। इसे जीवन की पहिली सीढ़ी कहना चाहिये। सब सुखों का मूल भूत यही है। हम भारतीय इस नियम की अवज्ञा करते हैं, इसी कारण दुःख पाते हैं। विद्यार्थी पहिले तो पतङ्गबाज़ी करते हैं, मेच खेलते हैं, ताश खेलते हैं, परन्तु जनवरी का महीना आते ही पुस्तक के कीड़े बन जाते हैं। यदि वह पहिले से ही नियमित समय पर

पढ़ते होते, तो उन्हें किताब का कीड़ा न बनना पड़ता, व उन का स्वास्थ्य न बिगड़ता।

समय पर कार्य्य करने का नियम बना लेने से, हमें यह कहना न पड़ेगा कि हमारा यह काम नहीं हुआ, वह नहीं हुआ। इस से हम प्रातःकाल ठीक समय पर उठ सकते हैं। स्नान सन्ध्या से निवृत्त हो, अपने दैनिक कार्य्य में लग सकते हैं। जो लोग नियमपूर्वक यथा-समय काम किया करते हैं, उनके पास सब कार्य्य समाप्त करने के अनन्तर भी समय बचा रहता है। उन्हें कभी व्याकुलता या काम न कर सकने के कारण खीज नहीं आती।

Jaden unfang ist Schewere. अर्थात् प्रत्येक कार्य्य का प्रारम्भ कठिन होता है, यह एक जर्मन कहावत है। पर अभ्यास व नियमपूर्वक चलने से सभी कुछ सुगम हो जाता है। यदि हमारा प्रत्येक मिनट किसी कार्य्य के लिए नियुक्त हो, तो हमारे पास कुविचारों के लिए कोई समय ही नहीं रहेगा। जो लोग उन्नति करते हैं, उन में यह गुण होता है। वेंञ्जमिन फ्रैंकलिन (अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति) में यह गुण था, हम आगे उसका समय विभाग भी देंगे। आज कल जो प्रमुख व्यक्ति हैं, हमें उन से शिक्षा लेनी चाहिए, और स्वयं वैसे ही आचरण के लिए उद्योग करना चाहिये। हम ने स्वयं निम्न व्यक्तियों को समय की नियमितता पर चलते देखा है :—

१—महात्मा मोहनदास कर्मचन्द्र गान्धी।

२—सर शादी लाल भूतपूर्व चीफ जस्टिस हाई कोर्ट पंजाब व जज प्रीवी कौंसिल।

३—सर मैलकम हेली भूतपूर्व गवर्नर पंजाब व संयुक्तप्रांत।

१—महात्मा गान्धी में यह सद्गुण सुना था, परन्तु कलकत्ता कांग्रेस से वापसी पर उन के साथ एक ही डिब्बे में यात्रा करते हुए उन के इस अद्भुत गुण को आंखों देखा। रेल में भी समय पर सोना, उठना, प्रार्थना व अन्य आवश्यक व स्वास्थ्यकर कार्य्य करना, कितना उत्तम है। महात्मा जी जब हरिजन आन्दोलन के सम्बन्ध में लाहौर पधारे, तो हम इन का वास्तविकरूप व उन की खान पान आदि व्यवस्था पूर्णतया जान सके। हमारा सम्पर्क, उन का आतिथ्य उन दिनों हमारा ही होने से हर समय लभ्य था।

महात्मा जी का दैनिक कार्य्यक्रम (प्रोग्राम) पहिले ही बन जाता था। उन के पञ्जाब में बहुत वर्षों के अनन्तर आने से लोगों की श्रद्धा उन के दर्शन के लिए अति प्रबल थी। उन के एक भाषण जो कि डी० ए० वी० कालेज छात्रावास (होस्टल) में होना था, को सुनने के लिए लोग बहुत अधिक संख्या में आये। अन्दर स्थान भर जाने पर लोगों ने बाहिर वाली दोनों सड़कों पर एकत्रित होना आरम्भ कर दिया। इतनी उत्कट भीड़ को देख कर कुछ पञ्जाबी नेता महात्मा जी के पास गए, और कहा, 'महाराज! आज का भाषण तो आप को बदलना पड़ेगा। भीड़ इतनी है कि कोई मार्ग ऐसा नहीं, जो आप को अन्दर ले जाया जा सके। यदि आप आज वहां गए, तो पैरों से रौंदे (कुचले) जायेंगे।' महात्मा जी मुस्करा कर बोले, 'भाई! ऐसा नहीं हो सकता कि मैं इतनी जनता को समय देकर न जाऊं। उन सब को

मुझे निराश नहीं करना है, अच्छा! आप सब रहने दो, मैं स्वयं ही चला जाऊंगा, और लोग मुझे रास्ता दे देंगे। महात्मा जी लाजपतराय भवन से निकले और एक दूर के रास्ते से घूम कर ठीक समय पर दर्शन के प्यासे लोगों के धक्के खाते हुए मंच पर जा विराजे, और अपना भाषण प्रारम्भ कर दिया। यह है भारत के नेता की बात। वह नियमितता के महत्व को जानते हैं, उन्हें अपनी बात के पालन करने में प्राणों का भी संकोच नहीं है। ऐसी शक्ति ब्रह्म-चर्य्य से ही आती है।

२—एक बार सर शादीलाल के यहां जब हम उन के एक सम्बन्धी की रोग परीक्षा के लिए गये, तो बातों ही बातों में उन्हों ने कहा, मैं रोगी होना पसन्द नहीं करता। मैंने अपना समय-विभाग बना रखा है, उस पर ही चलता हूं। सैर के समय सैर होती है. और काम के समय काम। मेरा खाना बहुत सादा और जितनी आवश्यकता होती है उतना ही तुला मपा हुआ होता है। इन्ही गुणों के कारण ऐसे सज्जन उच्च बनते हैं। हमारे बहुत से लाहौर निवासियों ने उन्हें नियमत समय पर पैदल भ्रमण करते देखा होगा।

३—सर मैलकम हेली जब पञ्जाब में गवर्नर थे, वह किसी भी पार्टी यूनीवर्सिटी या अन्य संस्था में भाषण के लिए घड़ी की सुई ठीक समय पर पहुंचते ही अपने स्थान पर आन विराजते थे। लोगों को उन की इस नियमितता (Punctuality) पर आश्चर्य होता था। वैसे तो प्रायः सभी योरोप-वासियों में यह गुण थोड़ा बहुत होता है, परन्तु वह इस में औरों से

बढ़े चढ़े थे। उन के विषय में यह भी दन्त कथा प्रचलित है कि उन के वाहक (ड्राइवर) को आज्ञा थी कि वह एक दिन पहिले ही सर मैलकम के कार्य्यक्रम को (अर्थात् कहां कहां जाना आना है) उन के मन्त्री से पूछ लिया करे; जहां जहां जाना हो वहां वहां मोटर पर जाकर घड़ी देख लिया करे कि मार्ग में कितना समय लगता है। क्या कभी किसी ने इस से बढ़ कर समय की नियमितता की बात सुनी है। धन्य है वह पुरुष जो कि समय का सदुपयोग कर अपने जीवन को यहां ही बड़ा कर लेते हैं।

फ्रैंकलिन की दिनचर्य्या

प्रातः काल उठते ही सोचना कि मैं आज कौन सा उत्तम कार्य्य करूं।

प्रातः—५ बजे उठना।
६ बजे नित्य के कार्य्य व ईश्वर-उपासना।
७ बजे दिन का कार्य्य नियत करना, स्वाध्याय व प्रातराश (ब्रेकफास्ट)।
८—९—१०—११ कार्य्य।

मध्याह्न—१२ बजे स्वाध्याय आय व्यय निरीक्षण।
१ बजे दोपहर का भोजन (लञ्च)।

तीसरा पहर २—३—४—५ कार्य्य।

सायं—६ बजे वस्तुएं यथा स्थान रखना।
७ बजे सायंकाल का भोजन, गाना, बजाना।
८ बजे आमोद-प्रमोद, वार्तालाप व लोगों से मिलना।

९ बजे मन के कर्त्तव्यों की अपने आप जांच।

रात्रि—१० बजे निद्रा।

इसी प्रकार अपनी अपनी सुविधा के अनुसार हमें भी अपना अपना समय-विभाग बनाना चाहिये और उस का अक्षरशः पालन करना चाहिये, इस के अतिरिक्त हमें एक कापी या डायरी (रोजनामचा) रखना चाहिये, जिस पर एक ओर हम ने जो भी काम या अपने अन्दर परिवर्तन लाने हों (ब्रह्मचर्य्यपालन, मितव्ययिता, कर्त्तव्य-पालन की प्रतिज्ञा, वाक्-संयम, इन्द्रिय-दमन, अल्पाहार, परोपकार आदि) लिख लें, और दूसरी ओर चिन्ह करते जायं कि हम ने इस सप्ताह में इतने कार्य्य करने थे, इतने किये हैं, और इतने नहीं कर सके। फिर यह सोचना चाहिये कि वह वह कार्य्य हम क्यों नहीं कर सके, क्या बाधा है। इसी प्रकार लिखते रहने से हमें पता चलेगा कि हम इन सद्गुणों का पालन कैसे कर रहे हैं व कितने उन्नत हो रहे हैं।

यथा-स्थान वस्तु रखना

वस्तु रखै निज ठौर पर, काम समय पर होय।
जो बान्धे इस नियम को, कोटि कोटि सुख होय॥

वास्तव में यह ठीक है, कि काम समय पर होय के साथ ही साथ, यदि प्रत्येक वस्तु भी निज ठौर (स्थान) पर पड़ी हो, तो कोई कष्ट नहीं होता। अन्धेरे में भी मनुष्य उस वस्तु को उठा सकता है। उसे हाय! यह कहां है!! वह कहां है!!! कह कर अपने नौकर, बच्चों, सम्बन्धियों को झिड़कना नहीं

ईश्वर-प्रार्थना

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।

मामैवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ गभवान् कृष्ण

भगवान् स्वयं उपदेश करते हैं कि तू मेरा भक्त हो, अपने मन को मेरे में एकाग्र कर, व मेरे में लीन हो कर मेरी भक्ति कर। अपने शरीर व आत्मा द्वारा केवल मेरी भक्ति करने से तू निश्चय मुझे अर्थात् मोक्षपद प्राप्त करेगा । हम भारतीयों में स्वभावतः भगवत्-भक्ति का भाव होता है, हमारे में नास्तिक से नास्तिक भी किसी समय, किसी कष्ट की घड़ी आने पर, भगवान् को किसी रूप में याद कर ही लेता है, और वह कृपा नाथ भी उस के सभी कष्ट दूर कर देता है ।

दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय ।
जो सुख में सुमरिन करे, दुःख काहे को होय ॥

भगवान् की निरन्तर भक्ति से हो नहीं सकता कि हमारे अन्दर कोई भी कुविचार या कुभावना आ जाय। यदि दैवात् कभी आ भी जाय, तो भगवान् की कृपा से वह जल्दी ही टल जाती है।

हमारे अन्दर पाप का भाव तभी आता है, जब हम यह समझने लगते हैं कि हमें कोई नहीं देख रहा । जब प्रतिक्षण भगवान् को अपना रक्षक व हर स्थान पर विद्यमान देखेंगे, तो हम पाप मार्ग पर कैसे अग्रसर हो सकते हैं। हमें तो सभी जगह उस के दर्शन करने चाहियें, कारण कि वह फूल व पत्थर में और यहां तक कि हमारे अपने अन्दर भी वर्तमान है।

श्री कृष्ण का वाक्य है कि "ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में विद्यमान है और उस की माया ही सब को यन्त्र के समान चला रही है"। हमें चाहिये कि हम अपने अन्दर सदा अच्छे भाव रक्खें, और हमारे विचार इतने पवित्र हों कि हमें सब और सब वस्तुओं में परमात्मा ही परमात्मा दीखने लगे।

हमें अपने अन्दर कुभावना के उठते ही भगवान् से अपने बचाव के लिये प्रार्थना करनी चाहिये। प्रार्थना से ही हम अपने कुविचारों को भगा सकते हैं। उसी की सहायता हमें बचा सकती है। इसी लिए दोनों समय प्रार्थना का विधान है।

प्रार्थना वही होती है, जो कि हमारे अन्तः करण से निकले। हम यहां पर एक प्रार्थना जो कि एक ब्रह्मचारी के उपयुक्त है लिख देते हैं, परन्तु उस में अपनी भक्ति व प्रेम के अनुसार अदल बदल हो सकती या उसे बढ़ाया जा सकता है।

प्रार्थना

(प्रातः व सायं दोनों समय के लिए)

हे प्रभो ! जगदाधार, पालक, पोषक, नाशक, सर्व शक्तिमान्, घट घट के वासी, अन्तर्यामी, महाप्रभो ! हम आप के भक्त व दास, आप की शरण आते हैं, नाथ ! आप हम पर कृपा कीजिये। जिस प्रकार से भी हो, हमारे अन्तःकारण को पवित्र कीजिये। शरीर को पावन बनाइये, और मस्तिष्क में किसी प्रकार का भी कलुषित विचार न आने दीजिये। हे देव ! आप हमें शक्ति दीजिये, जिस से हम अपने ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन कर सकें और संसार की कोई बड़ी से बड़ी शक्ति भी हमें अपने निश्चय से विचलित न कर सके। हम अपने निश्चय या प्रतिज्ञा में पूर्ण उतरते हुए संसार में प्राप्त

होने वाले प्रलोभनों से बचते रहें। हम स्वयं पाप-वासना में न फंसे और नाही, दूसरों को फंसने दें। हे स्वामिन्! हमारे सभी अपराधों को क्षमा कर, हमें सद्गुण व पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान कीजिये। हम जिस किसी सत्कार्य्य को करें, उसी में हमें पूर्ण सफलता प्राप्त हो, हे परम पिता! बस यही हमारी आप से प्रार्थना है। ॐ शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

यदि हम इस प्रकार सच्चे हृदय से प्रार्थना करेंगे, तो हो नहीं सकता कि भगवान् हमारी सहायता न करें। उन्हें अमीरों के पकान्न से निर्धन सुदामा के चावल ही अधिक भाते हैं। वह तो चेता चमार तक की खिचड़ी सहर्ष खाने वाले हैं। जब वह दुराचारी मनुष्य के, एक बार स्मरण करने से भी उस की रक्षा करने वाले हैं, तो वह एक सदाचारी की रक्षा क्यों न करेंगे। केवल निश्चय व सच्ची भक्ति की आवश्यकता है, फिर हमारे शब्द कैसे ही क्यों न हों, वह अवश्य फलीभूत होंगे।

जब लग गज बल अपनों बरत्यो, नेक सरयो नहिं काम।
निर्बल होय बल राम पुकारयो, आये आधे नाम॥

स्वाध्याय

'जैसा भी हमारा विचार प्रातःकाल होगा, वैसा ही हमारा दिन बीतेगा' यह हम पहिले लिख आये हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम प्रातः, ऐसा उन्नत व सद्विचार अपने अन्दर लावें कि हमारा सारा दिन अच्छा व्यतीत हो। सारा दिन अच्छा होने का अर्थ सारी आयु का ही अच्छा होना है, कारण कि हमारा जीवन और कुछ नहीं, किन्तु दिनों का संग्रह मात्र ही है। :—

Every day is a little life, and our whole life, but a day repeated.

हम सत्सङ्ग को भी बहुत कुछ स्वाध्याय के अन्तर्गत समझते हैं। सत्सङ्ग कभी कभी हो सकता है, परन्तु स्वाध्याय एक अनोखी वस्तु है; आप को बड़े से बड़े मनुष्य के विचार सहज में मिल जाते हैं, और आप जिस समय चाहें, उन विचारों से सत्परामर्श कर सकते हैं। यह विचार, आज कल के प्रसिद्ध पुरुषों व जो हम से पहिले हो चुके हैं, उन सभी के मिल सकते हैं। देखिये! इतने महान् व्यक्तियों की सहायता आप को थोड़े व्यय से मिल सकती है, और आप का उपकार कर सकती है; इस लिये थोड़ा बहुत स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये। प्रत्येक ब्रह्मचारी यदि कुछ समय भी प्रतिदिन नियम से स्वाध्याय करे, तो बहुत कुछ जीवन की उच्चता को प्राप्त कर सकता है।

करत करत अभ्यास के, जड़-मति होत सुजान।
रसरी आवत जात के, सिल पर होत निसान॥

हम अपने पाठकों को, निम्न पुस्तकों का स्वाध्याय करने के लिए कहेंगे।

१—भगवत् गीता (गीता प्रेस गोरखपुर)।

२—रामायण।

३—आश्रम भजनावली (साबरमती आश्रम वाली)।

४—Rising in the world, by Orison Morden.

५—ब्रह्मचर्य्य सम्बन्धी कोई पुस्तक। उपरि लिखित पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी यथेच्छ पढ़ी जा सकती हैं।

आहार

"अस्वाद ब्रह्मचर्य्य से निकट सम्बन्ध रखने वाला है। जिस

तरह दवा खाते समय हम इस बात का विचार नहीं करते कि ज़ायकेदार है या नहीं, पर शरीर के लिये आवश्यकता समझ कर ही उसे योग्य मात्रा में खाते हैं, उसी तरह अन्न को समझना चाहिये। जिनके अन्दर विषय-वासना रहती है, उन की जीभ बहुत स्वादलोलुप होती है।" महात्मा गांधी की यह उक्ति अक्षरशः सत्य है। जब तक हम अपनी जीभ को ही जीत नहीं सकते, तब तक और किसी इन्द्रिय को क्या जीतेंगे। हमारे स्वास्थ्य को बिगाड़ने में जो अङ्ग सहायक हैं, जीभ उन में से एक है, परन्तु दोष हमारा है। जब तक सच्ची भूख न लगे, तब तक भोजन न करना चाहिये। साधारणतः हमारे भोजन में घी, स्टार्च व मीठे पकान्नों की इतनी भरमार रहती है कि जब तक हम खूब परिश्रम या व्यायाम न करें, तब तक उन्हें हज़म नहीं कर सकते; अतः यह समझ कर कि खाने का समय हुआ है, या भोजन के निश्चित समय आ जाने पर, केवल इच्छा मात्र से, जब कि वास्तव में भूख न हो, नहीं खाना चाहिये। जब हम बिना भूख के आमाशय को लादते चले जाते हैं, तभी कफ़ सम्बन्धी व अन्य बहुत से रोग, या सब रोगों का मूलभूत अजीर्ण, हो जाता है। हम खाने बैठते हैं, पर यह नहीं समझते कि पेट भर गया है, बस कर दें। 'यह यह वस्तु हमारी प्रकृति के विरुद्ध है' इस का विचार न रखते हुए, केवल उसके स्वादु होने से ही उसे न खाते जायें। आज कल कई एक लोग किसी पेटू पण्डित का बनाया 'परान्नं दुर्लभं लोके, शरीराणि पुनः पुनः' अर्थात् पराया अन्न संसार में दुर्लभ है और शरीर बार बार मिलता रहता है, ऐसा

कह देते हैं। परन्तु ऐसे मूढ़ यह नहीं समझते कि अधिक खाने से यह शरीर तो चला ही जायगा और पुनर्जन्म में मनुष्य-शरिर-प्राप्ति का कहना ही क्या।

हम को जीवित रखने के लिये चौबीस घण्टे में आध सेर भोजन भी पर्याप्त होता है। हम लोग जितनी भी भर्ती कर लेते हैं, वह शरीर को लगती नहीं; केवल आमाशय को कष्ट देती व उसे बिगाड़ती है, और फिर जैसे के तैसे रूप में ही बाहिर निकल जाती है। धर्म ग्रन्थ कहता है:—

अनारोग्यं, अनायुष्यं अस्वर्ग्यं चाऽतिभोजनम्।
अपुण्यं, लोकविद्विष्टं तस्मात्तद् परिवर्जयेत्॥

अर्थात् अधिक भोजन आयु को घटाता, बीमार करता और लोगों में हंसी कराता है कि बड़ा पेटू है। कई एक पाप कर्मों का जन्मदाता होने से नरक का भागी बनाता है। इस के अतिरिक्त अधिक भोजन काम-इच्छा, को बढ़ाता है।

Eat to live and not live to eat अर्थात् हम को जीवन धारण करने के लिये खाना चाहिये, खाने के लिये जीना नहीं चाहिये। हम जो भी कुछ खायें, वह जीभ के स्वाद को मिटाने के लिए ही नहीं, अपितु उस वस्तु के हमारे शरीर पर होने वाले प्रभाव को देखते हुए, निश्चित समय पर उस के अन्दर विद्यमान सात्विक गुणों को ध्यान में रख खाना चाहिये। जब हम ऐसा करेंगे, तो कोई कारण नहीं कि हम अधिक खा जायं। असात्विक (अर्थात् राजस व तामसिक) भोजन ही ऐसे हैं कि जिन्हें हम स्वाद के लोभ से अधिक खा डालते हैं और काम वासनाओं के शिकार बनते हैं।

अधिक परिमाण में खाया भोजन, जहां नाना रोगों द्वारा स्वास्थ्य को हानि पहुंचाता है, वहां स्वप्नदोष आदि भयङ्कर रोग भी उत्पन्न करता है। मित आहार करने वाले को ऐसे रोग प्रायः नहीं सताते। दोपहर का भोजन आवश्यकता से अधिक न होना चाहिये, व सायंकाल का भोजन आवश्यकता से कुछ कम होना, लाभ करता है। पूर्ण स्वास्थ्य की दशा में भी थोड़ी भूख रख कर खाना, लाभ देता है। आज कल के वैज्ञानिक या प्राचीन ऋषियों का यही कहना है कि जहां तक हो सके, फल व दूध का व्यवहार विशेष करना चाहिये। हमें शेष सभी संयमों से पहिले जीभ का पूर्ण संयम करना चाहिये।

हमारा भोजन सात्विक हो; उस में गरम, चटपटी, मसालेदार वस्तुओं की आवश्यकता नहीं। ऐसा भोजन पाचन शक्ति को बिगाड़ने वाला व व्रत-भङ्ग करने वाला होगा। जितने भी भोज्य पदार्थ बहुत से परिवर्तनों में से गुज़रते हैं, उतना ही वह देर में पचने वाले और निर्वीर्य्य हो जाते हैं; इस लिए ऐसे पदार्थ न लेने चाहियें। हम हित कर वस्तुओं की सूची भी अगले प्रकरण में दे रहे हैं। यदि हम अपने खाने की इच्छा को वश में कर लें, तो हमारा कार्य्य बहुत अंश तक सरल हो सकता है। जब तक हम निश्चित वस्तुओं का सेवन, निश्चित समय पर नहीं करते, तब तक ब्रह्मचर्य्य का पूर्ण पालन होना, कठिन बात है।

शारीर शास्त्र के ज्ञाताओं का कहना है कि हमारे शरीर के सभी परमाणु, दस ग्यारह वर्ष में बदल जाते हैं। यदि हम आज से भी पूर्ण सात्विक भोजन लेना आरम्भ कर दें, तो

दस वर्ष के अन्दर ही हमारा शरीर व उस के सभी परमाणु जैसे हम चाहें, वैसे ही हो जायेंगे। अतः प्रत्येक ब्रह्मचारी का कर्त्तव्य है कि जितना भी जल्दी हो सके, सात्विक भोजन आरम्भ कर दे। लिखा है :—

हिताशी स्यात्, मिताशी स्यात्, कालभोजी, जितेन्द्रियः।
पश्यन् रोगान्, बहून् कष्टान् बुद्धिमान्, विषमाशनात् ॥

मनुष्य को चाहिये कि वह हितकर व अपनी प्रकृति के अनुकूल पदार्थ ही खावे, वह अनुकूल पदार्थ मात्रा में खाते हुए भी समय पर खाने चाहियें। खाते हुए अपनी इन्द्रियों (जिह्वा आदि) पर संयम रहे। इस विषम-अशन (भोजन की विपरीतता) से ही हमें नाना रोग होते हैं।

ब्रह्मचारी के उपयुक्त भोजन

अन्नः—गेहूं का आटा व दलिया, जौ व जौ का दलिया, चावल (सांठी के विशेषकर)।

दालः—मूंग, मोठ, मसर, चना, मटर और कभी कभी अरहर व लोबिया भी।

शाकः—(आज कल विटेमिन पद्धति के अनुसार शाक विशेष रूप से लेने के लिये कहा जाता है। पत्तों के साग बलकारक न होने पर भी जिन्हें कब्ज रहती हो, उन्हें खूब लेने चाहियें। कारण कि यह बिना औषधि के लाभ करते हैं। परन्तु यह लाभ तभी होता है जब कि उन्हें ज़्यादा देर स्वादु बनाने के लिये पकाया व घी, तेल आदि में तला न जाय। जो साग, फल या अन्य पदार्थ हम कच्चे ही खा सकें, वह कच्चे लें, और दूसरों को उतना ही पकाना चाहिये कि आमाशय उन्हें

सुगमता से उस रूप में ग्रहण कर सके। और उन के पोषक अंश (vitamines) भी कम न होने पावें। हमारे देश की ऐसी गन्दी प्रथा है कि जब भी चावल, आंवले आदि अन्य सब्ज़ियां या मुरब्बे बनाते हैं, तो वह उबालने वाला पानी फेंक देते हैं, इस प्रकार उन में से पोषक अंश तो निकल गये और फो क सी वस्तु रह गई; जिसे कि हम स्वादु समझ कर खाते हैं। इस पानी को कभी फेंकना न चाहिये। विदेशी लोग इस पानी को नहीं निकालते। निकालें भी, तो इसी पानी को वह सूप (Soup) के रूप में भोजन के सर्व प्रथम ही, पी लेते हैं।

पड़वल, घिया, घियातोरी, करेला, गाजर, बन्द गोभी (गांठ व फूल भी), पेठा, कमल की जड़ (भे), कमल गट्टा (कौल-डोडे की चपनियां) जिमीकन्द, टिण्डे, सोहाञ्जने के फूल, कचनार के फूल, ककौड़े, छोटी मूली, कच्चे केलेकी सब्ज़ी, टिमाटर, चुकन्दर, आंवला आदि।

पत्तों के शाकः—बाथू, पालक, कुलफ़ा, कभी कभी चौलाई, सोया व मेथी भी।

फलः—आम, अनार, सेब, सन्तरा, नासपाति, अंगूर, शहतूत, सिंघाड़ा, जामुन, फालसा, नारियल, केला, पपीता, अनन्नास, खीरनी आदि। (खटाई बिजौरा, आंवला, अनार व नींबू की, खांसी आदि न होने पर ली जा सकती है; अचार नहीं।) बिजौरे की तुरियां नमक काली मिर्च लगा कर या वैसे भी खाई जा सकती हैं।

सूखे फल—बादाम, खजूर, किशमिश या काला मुनक्का।

दूधः—की प्रशंसा में कोई विदेशी कवि लिखता है—

Who have become large, strong, vigorous people,

Who have reduced their infant mortality,
Who have the best trades in the world,
Who have an appreciation for art,
literature and Music,
Who are progressive in science and in every
activity of the human intellect ?
Are the people who have used liberal amounts
of milk and its products.

संसार में वह कौन हैं, जो कि हृष्ट पुष्ट व शक्तिशाली हैं? वह कौन हैं, जिन के बच्चों की मृत्यु संख्या कम है ? वह कौन हैं, जिन का व्यापार सब से अधिक है ? वह कौन हैं, जिन का साहित्य, इतिहास, व संगीत से प्रेम है ? वह कौन हैं, जिन्होंने विज्ञान व ऐसे ही दूसरे कामों में उन्नति की है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर एक है कि ऐसे वही लोग हैं, जिन्होंने पर्याप्त मात्रा में दूध या उस के बने पदार्थ सेवन किये हैं। अतः दूध का सेवन परम हितकर है। माता के अनन्तर दूसरे दर्जे पर गाय या बकरी का दूध है। दूध बिना मीठे के लेने का अभ्यास करना चाहिये। कारण कि उस के अन्दर स्वभावतः ही खांड, काफी मात्रा में होती है। दूध में से निकली खाण्ड बाज़ार में 'मिल्क शूगर' (Milk-Sugar) के नाम से बिकती है। अतः हमें केवल जीभ के स्वाद के लिये और खाण्ड नहीं डालनी चाहिये। धारोष्ण दूध (ताज़ा दुहा हुआ कच्चा दूध) पीना बहुत अच्छा व लाभकर है; पर यह उन्हीं लोगों को पीना चाहिये, जिन के घरों में अपनी गाय हैं या जो एक हृष्ट पुष्ट

गाय का दूध अपने सामने दुहा कर प्राप्त कर सकते हैं। भारतवर्ष में योरोप की तरह उसके म्यूनिसिपल सीमा के अन्दर आने से पहिले, उसे कीटाणु रहित (Sterilize) करने का कोई राजकीय नियम नहीं है। गौओं में आजकल तपेदिक का रोग बहुतायत से फैला हुआ है; अतः साधारण कच्चा दूध कभी पीना नहीं चाहिये। बाज़ारी दूध पीने से पहिले पन्द्रह मिनट उबालना, अच्छा होता है।

बकरी के दूध की प्राचीन समय में व आजकल भी बहुत प्रशंसा है,आप इसे जो भी कुछ खाने को दें, वह सभी कुछ खा लेगी और एक प्रकार का अर्क या सत्व के रूप में दूध आप को देगी। वह इधर उधर दौड़ फिर कर खूब व्यायाम कर लेती है, अतः इसका दूध बहुत हलका होता है।

कई एक मनुष्यों को दूध नहीं पचता या पेट में वायु कर देता है। परन्तु दूध के अन्दर विद्यमान गुण अन्य पदार्थों में कम हैं। दाना इलायची व सौंफ डाल कर उबालने से भी दूध पचने लगता है। सर्दियों में गरम दूध में दालचीनी या चाय की पत्तियां डाल कर पीना लाभ देता है। ऐसे लोगों को इस प्रकार से थोड़ी सी ली हुई चाय कोई हानि नहीं करती। बहुत से पदार्थ साधारणतः ब्रह्मचारी के लिये निषिद्ध हैं; परन्तु यदि स्वास्थ्य की दृष्टि से या वैद्य की आज्ञा से सेवन किये जांय, तो व्रत भङ्ग नहीं होता। "शरीरमाद्यं खलु धर्म्म-साधनम्" शरीर ही धर्म्म आदि करने के लिये मुख्य साधन है। किसी भी वस्तु का स्वाद या शौक के लिये लेना पाप है। किन्तु किसी कारण या गुण विशेष के लिये कभी कभी लेना ठीक है।

जलः—आजकल शहरों में नलके का जल पीने की प्रथा है, परन्तु जिन लोगों को स्रोत (चश्मा) या वर्षा का पानी मिल सके, इन्हें वह कई एक धातुओं के मिले रहने के कारण पीना चाहिये। वर्षा ऋतु में नदी का जल पीना अच्छा नहीं। भोजन के बीच में भी आवश्यकता पूर्वक एक एक दो दो घूंट पानी पीना ठीक होता है, अधिक नहीं। भोजन खूब चबा चबा कर खाना व दूध भी इसी प्रकार घूण्ट घूण्ट कर पीना चाहिये। जितना स्लाइवा (थूक) मिल कर जायगा, उतना ही भोजन ठीक पचेगा। हमें दान्तों का काम आन्तों से नहीं लेना चाहिये। जो भोजन हम बिना चबाये खाते हैं; वह जैसे का तैसा निकल जाता है और साथ ही कई एक रोग भी दे जाता है, अतः भोजन के पूर्णतया चबाने में किसी प्रकार भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। भोजन के बाद कुछ कदम चलना व पांच दस मिनट विश्राम करने के अनन्तर अन्यान्य कार्य्य करने चाहियें। दिन में चार बार खाना ठीक है; परन्तु अध्यापक, स्कूल कालेज व दफ्तर जाने वाले तीन बार कर सकते हैं।:—

१—प्रातराश (ब्रेकफास्ट)—दूध. बादाम, फल, टोस्ट।
२—मध्याह्न भोजन (लञ्च)।
३—४ बजे दूध व फल।
४—सायं भोजन (डिनर)।

प्रातः व सायं भोजन के मध्य, दूध व फल सेवन ही उत्तम है। कई लोग एक समय भोजन व दूसरे समय फल व दूध लेते हैं। बहुत से व्यक्ति केवल फल दूध पर ही गुज़ारा करते हैं। मनुष्य को अपनी स्थिति बल व व्यय

देखते हुए जो भी ठीक हो, वह करना चाहिये। हम लोग विदेशीय लोगों की नकल करते हैं, और जितनी बार वह खाते हैं, उतनी बार ही खाना चाहते हैं; परन्तु यह नहीं देखते कि उनका भोजन कितना हलका व सुपच होता है और दूसरे एक वृद्ध अंगरेज भी कोई न कोई व्यायाम अवश्य करता है।

निश्चित समय पर सात्विक भोजन शरीर को हित पहुंचाता है, काम को बढ़ाने में कोई उत्तेजना नहीं देता। और फिर ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन करने वाले का भोजन, काम-धन्धा मनोरञ्जन, साहित्य-जीवन का उद्देश्य व सभी कुछ दूसरों से अलग होना चाहिये।

उपवास

आहारं पचति शिखी, दोषानाहारवर्जितः।

अर्थात् शरीर की पाचक अग्नि आहार (खाए हुए भोजन) का पाचन करती है; आहार समाप्त हो जाने पर वह अभ्यन्तरीय दोषों का नाश करती है। उपवास करने से विषय हमारे पास नहीं आते। उपवास अपना संयम करने के लिये एक अद्भुत व्रत है। उपवास करने से पापी पेट के लादने से जो काम विकार आते हैं, उन से बहुत कुछ हम बच सकते हैं और उस दिन बहुत सा समय सत्सङ्ग व स्वाध्याय में व्यय कर, विचार-शुद्ध कर सकते हैं। प्रत्येक ब्रह्मचारी के लिये सततोद्योग आवश्यक है; परन्तु बहुत से लोग व्रत के दिन कुछ खाया नहीं है, इस कारण कोई काम नहीं करते। वह खाली लेटे या बैठे रहते हैं। परिणाम उलटा होता है। काम विकार के दमन के बदले मस्तिष्क खाली होने के कारण, कुविचार उठा करते हैं। अतः उपवास के दिन भी कुछ न

कुछ कार्य्य अवश्य करना चाहिये, वह हलका भले ही हो। नियम पूर्वक उपवास से हमारे अन्दर के रोग उत्पन्न करने वाले दोष, भस्म हो जाते हैं; साधारण रोग होते ही नहीं, और जो रोग दैवात् हो भी जांय, तो उन का घातक प्रभाव नहीं होता; पर उपवास जैसा आज कल लोग रखते हैं, वैसा न हो। निर्जला एकादशी के दिन लोग जल नहीं पीते, परन्तु शर्बत, दूध व लस्सी पीते हैं; अन्न का बना पदार्थ नहीं खाते, पर सिंघाडे के आटे के पकौड़े, आलू, कचालू, खरबूजे, तरबूज व सभी फल लेते हैं। दिन में कुछ पीना हो, तो केवल थोड़ा कलाकन्द, पेड़े, बर्फी या रबड़ी खा कर पीते हैं; परन्तु उपवास निराहार रहने का नाम है। यह सोचते रहने का नहीं कि उपवास का पारण करते हुए हम क्या खायेंगे ?

उपवास हमारे अन्दर नया उत्साह, बल व शक्ति उत्पन्न करता है। हमारे अन्दर होने वाले बहुत से विकारों को दूर करता है। उपवास की महिमा सब देशों व धर्म्मों में हैं। मुसलमान, ईसाई सभी इस के महत्व को मानते हैं। मुसलमानों में वर्ष में लगभग एक मास रमज़ान के दिनों में उपवास की प्रथा है।

व्रत करना पहिले पहिल कुछ कठिन जान पड़ता है, परन्तु दो एक बार करने पर कोई कठिनता नहीं रहती। आहार जैसे जैसे कम किया जाय, वैसे वैसे ही कम हो जाता है, और जैसे जैसे बढ़ाया जाय बढ़ जाता है; यहां तक कि मनुष्य पेटू बन जाता है; पर कुछ अभ्यास से कई कई दिन का उपवास करने को जी चाहने लगता है। कई सज्जनों के लिये, उपवास का दिन ढूंडना कठिन हो जाता है। मंगल,

एकादशी, पूर्णिमा या जो भी दिन अनुकूल हो, उस दिन उपवास रक्खा जा सकता है। लोग, उपवास करने वाले की बहुधा हंसी किया करते हैं, पर दूसरे जो भी चाहें कहें, हमें तो कर्त्तव्यनिष्ठ होना है। महात्मा गान्धी, श्रद्धेय मालवीय जी आदि नियम से उपवास करते हैं।

हम ने लिखा है कि उपवास निराहार रहने का नाम है, परन्तु अपनी आयु बल व आवश्यकता देखते हुए इसे पूर्ण या अर्ध किया जा सकता है। दिन भर कुछ न खाना पूर्ण उपवास है। केवल एक समय भोजन करना अर्ध उपवास है। रात्रि को अधिक खा लेने से प्रातः कुछ न खाना भी उपवास ही है।

१—उपवास से रोगाणु मर जाते हैं। (२) मौसमी बुखार व अन्य बुखार दूर होते हैं। (३) उत्साह व आत्मिक शक्ति आती है, बल बढ़ता है, आत्मा प्रसन्न रहती है। (४) उपवास द्वारा ब्रह्मचर्य्य पालन सहज हो जाता है।

निद्रा

निद्रा तु सेविता काले, धातु साम्यमतन्द्रिताम्।
पुष्टिं वर्णं बलोत्साहं, वह्निदीप्तिं करोति च॥

समय पर सोने से, कार्य्य आदि करने से उत्पन्न थकावट, धातुओं में आई कमी पूरी होती है। आलस्य दूर हो कर हमारे शरीर की पुष्टि होती, बल व उत्साह बढ़ता और पाचन शक्ति, ठीक होती है। ठीक ठीक नीन्द न आने से उबासियां (जम्भाइयां) आती रहती हैं, आलस्य घर दबाता है, हाथ, पैर टूटते रहते हैं, सिर दर्द आदि होते हैं। और फिर :

१—स्वप्नदोष प्रायः प्रातः काल के समय ही अधिकतर हुआ करते हैं।

२—प्रातः काल जाग कर उस बहुमूल्य समय का सदुपयोग किया जा सकता है। पहिली रात्रि को एक घण्टा सोना पिछली रात्रि के दो घण्टे के बराबर होता है। जल्दी सोना व जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ, धनाढ्य व बुद्धिमान बनाता है।

जो मनुष्य सारा दिन परिश्रम कर के सोता है; वह नीन्द के पूरे लाभ जान सकता व अभ्यास से ठीक समय पर उठ सकता है। लेखक ने स्वयं इच्छा शक्ति का प्रयोग कर, इस की सत्यता अनुभव की है। नींद तो समय पर खुल जाती है; पर यह और बात है कि आलस्यवश हम बिस्तरा न छोड़ें, और फिर सो जांय। कई एक व्यक्तियों में शारीरिक परिश्रम न होने से, उन्हें नींद नहीं आया करती। हम एक छोटी सी कथा पाठकों के मनोरंजन के लिए लिखते हैं।

एक बार सम्राट् अकबर व राजा बीरबल शिकार खेलने जा रहे थे। रास्ते में देखते हैं कि एक मज़दूर सड़क पर पत्थर तोड़ता तोड़ता, वहीं सो गया है। उसे ऐसी गाढ़ी नीन्द आई है कि घोड़ों की टाप से भी वह नहीं जागा। सम्राट् ने कहा, 'देखो बेचारे को कैसी नीन्द आ रही है? यदि इसे अच्छा सा बिछौना मिल जाता, तो यह अधिक सुख की नीन्द सोता।' बीरबल ने उत्तर दिया, 'जहांपनाह! इसे बिछौने पर ऐसी नीन्द न आयगी। इसे तो मेहनत से थकने के कारण ऐसी नीन्द आई है। इस की मेहनत छुड़ाने पर देखिये कि इसे एक नरम बिछौने पर भी नीन्द आती है या नहीं।' अकबर ने कहा, 'नहीं, यह वहां अधिक आराम से सोयगा।'

बीरबल ने बादशाह से अलग होते ही उस मज़दूर को

सादगी पसन्द होते जा रहे हैं। नंगे पैर ओस में चलने, नंगे रहने (nudist क्लबों) की प्रथा वहां फैल रही है।

हम पाठकों को अच्छा पहिरने व भली प्रकार रहने से नहीं रोकते, परन्तु चाहिये यह कि कपड़ा सादा व साफ हो, अच्छा सिला हो; मुंह पर पाउडर, क्रीम या स्नो का व्यवहार न हो; खुशबूदार तैल, जिन में वाइट आयल (साफ किया हुआ मिट्टी का तेल) मिला रहता है, का लगाना छोड़ दिया जाय, और जहां तक हो सके, केवल फैशन के लिये किसी चीज़ का उपयोग न करें। प्रायः सभी फैशन काम को बढ़ाने वाले [illegible] हैं

अमीरी का ढोंग बनाने के लिये। ... रहा था, अब वहां अकबर के साथ पहुंचा। देखते क्या हैं कि वह मज़दूर करवटें बदल रहा है। कभी इस करवट सोता है, तो कभी दूसरी करवट। उसे नींद नहीं आती। बहुत देर बीतने पर बीरबल व बादशाह आगे बढ़; उसे आवाज़ दे कर पूछा, 'क्यों भाई! क्या बात है? आज तुम्हें नींद क्यों नहीं आ रही।' वह बोला, 'हज़ूर! न मालूम बिस्तरे पर कुछ चुभ रहा है; जिसके कारण नींद नहीं आती।' बीरबल ने बिस्तरे पर हाथ फेरा, तो चादर के नीचे से वही बिनौला निकल आया।

इस पर बीरबल ने बादशाह से कहा, 'शाहंशाह! आप ने देख लिया। वह नीन्द मेहनत की बदौलत थी। इसी वजह से इसे पत्थर भी न चुभते थे और अब एक बिनौला भी इसे सोने नहीं देता। पाठको! आप जैसी नींद चाहते हैं वैसी स्वयं चुन लें। निम्न नियम भी आपको पूरी नींद सोने में सहायता देंगे।

कर सकता था। हमारे राजा व मुग़ल सम्राटों में से भी, बहुत से सादगी पसन्द हो चुके हैं। औरङ्गज़ेब व नसीरुद्दीन ऐसे बादशाह थे। वर्तमान महाराजा बड़ोदा भी ठाट बाट पसन्द नहीं करते। हमें चाहिये कि हम भी अपनी फालतू टीप टाप हटा दें। फालतू सजावट के होते हुए भी यदि हमारा मन शुद्ध है, तो भी देखना यह है कि इस से दूसरे के हृदय पर तो बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

सत्सङ्ग

हीयते हि मतिः पुंसां, हीनैः सह समागमात्।
समैश्च समतामेति, विशिष्टैश्च विशिष्टताम्॥

मनुष्य जैसों की सङ्गति करता है, जैसों के पास उठता बैठता हैं, जैसों से मित्रता व बोलचाल रखता है, वैसा ही स्वयं हो जाता है। इस लिये मनुष्य जैसा भी बनना चाहे, वैसे ही साथी चुने। नीच पुरुषों की मित्रता से बुद्धि मलीन होती है, अपने जैसों की सङ्गति से न वह घटती है, न बढ़ती है; परन्तु अपने से उच्च पुरुषों के सत्सङ्ग से वह उन्नत होगी।

आज कल प्रायः हम लोगों के साथी बातूनी और अधिक दम्भी होते हैं। वह व्यर्थ की बातें सुना कर हमारा सर्वनाश कर डालते हैं। इन बातों में, प्रायः काम सम्बन्धी चर्चा ही अधिक रहती है। बुरे वातावरण में रहने से चित्त बुरा हो जाता है और सङ्कल्प भी बुरे ही आते हैं, जिन के फल-स्वरूप मनुष्य दुःखी व उन्हीं पर आचरण करने से पापी हो जाता है।

बुरे लोग भी सत्सङ्गति पा कर सुधर जाते हैं, पर जो पहिले ही भले हैं वह कितने उच्च हो जायेंगे, इस का तो कहना

ही क्या। हमारे अन्दर जितनी बुराइयां हैं वह स्वयं नहीं आतीं, किन्तु आचार हीन व बदमाश ही, हमें ज्ञात या अज्ञात रूप से सिखा देते हैं। मनुष्य स्वभाव से कभी भी निश्चल नहीं बैठता, अतः वह अपने खाली समय में जैसा भी उस के साथी करते हैं, वैसा ही करना प्रारम्भ कर देता है। अच्छी बात व सत्सङ्गति का प्रभाव देर से होता है; पर सिगरेट पीना, गाली देना व अन्य आचरण-विरुद्ध भाव जल्दी आ जाते हैं। सत्पुरुषों की पांच मिनट प्रति दिन की सङ्गति भी हमें कई, नई नई बातें, सिखा देती है। उनका साथ हमें स्वर्गीय आनन्द देता है, जहां कि नीचों का सङ्ग जीवन को नारकीय बनाता है। लिखा है:—

वरु भल वास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देई विधाता॥

सत्संग से हमारी बुद्धि तीव्र होती है, ज्ञान बढ़ता है, चित्त प्रसन्न रहता है, और अच्छे विचार व सङ्कल्प उठा करते हैं। बड़े बड़े ऋषि मुनियों का जीवन सत्सङ्ग के प्रभाव से ही उच्च बना था। रामायण में लिखा है:—

मुनि आश्चर्य करे जनि कोई। सत्संगति महिमा नहिं गोई॥
बालमीकि, नारद, घटयोनी। निज निज मुखन कही निज होनी॥*

थियेटर में जाना, अश्लील सिनेमा देखना आदि भी कुसंग

* बालमीकि, नारद और अगस्त्य की कथा पाठक तुलसीकृत रामायण में पढ़ें। उनकी कथा पढ़ने से पता चलेगा कि सत्सङ्गति के प्रभाव से उनका जीवन कैसे बदल गया। डाकू व चोर भी कैसे भगवान के उपासक बन गए।
—लेखक

में ही अन्तर्गत समझना चाहिये । कारण कि दो ढाई घण्टे वहां रह कर, हम कुछ न कुछ बुराई सीख सकते हैं । प्रति दिन ऐसी वस्तुओं के देखने का तो कहना ही क्या ।

सततोद्योग

योयमर्थं चिन्तयते तदर्थं यतते तथा ।
सोतमवश्यमवाप्नोति, न चेच्छ्रान्तो निवर्तते ॥

जो मनुष्य, किसी भी वस्तु की अभिलाषा उसकी प्राप्ति के लिये पूर्ण प्रयत्न करते हुए, करता है; वह वस्तु उसे अवश्य मिल जाती है, यदि वह बीच में ही थक कर उद्योग छोड़ नहीं देता । वैसे भी पौरुषमय जीवन ही जीवन है, आलस्यमय जीवन मृत्यु के समान है । जो वास्तव में जीना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि खूब पुरुषार्थ करें । मनुष्य को अपने समय का विभाग कर कुछ न कुछ करते रहना चाहिये । उद्योग रहित पुरुष का मन पाप की ओर अग्रसर होगा और उस में दुर्भावनाएं जागृत होंगी; जो कि उसे पाप गर्त में खींच ले जायेंगी। 'An idle brain is the Devil's workshop.' अर्थात् एक आलसी मनुष्य का मस्तिष्क शैतान का कारखाना होता है। अतः खाली समय मिलते ही, और नहीं तो किसी पुस्तक का स्वाध्याय या राम नाम लेना ही प्रारम्भ कर दें,जिससे कि मन एक स्थान पर लगा रहे और इधर उधर न दौड़े । उद्योग का आदर उद्योगी ही जान सकते हैं, प्रत्येक व्यक्ति नहीं ।

एक बार स्वामी दयानन्द से किसी ने पूछा, 'हे महाराज ! क्या आप को भी कभी काम सताता है' उन्हों ने उत्तर दिया, 'मैं सदा किसी न किसी कार्य में निमग्न रहता हूं फिर मुझे

काम विकार कैसे सता सकता है'। जब मन खाली होगा तभी ब्रह्मचारी को काम सतायेगा। लिखा भी है:—

यती च ब्रह्मचारी च सदा बद्धश्च घोटकः।
अन्तः पुरमरण्यं च सदा मैथुन चिन्तकाः॥

यती, ब्रह्मचारी, सदा बन्धा घोड़ा, अन्तःपुर व जङ्गल ऐसे हैं कि जिन्हें व जहां काम-विकार, स्वाभाविकतः अधिक सताया करता है। स्वामी दयानन्द की तरह आप भी किसी न किसी कार्य में लगे रहिये, जिस से काम-विकार न सता सके।

(१) सदा कार्य-व्यग्र रहने से मनुष्य कुविचारों में नहीं बहता और नाहीं उसे कामाग्नि सताती है। (२) जो निरन्तर कार्य में लगा रहता है, वही संसार में सुख का अनुभव कर सकता है; उस से ही दूसरों के उपकार की आशा हो सकती है। (३) उद्योग शील को जहां धन की प्राप्ति होती है, वहां उसका स्वास्थ्य भी ठीक रहता है। (४) उद्योगी पुरुष सभी विपत्तियों व बाधाओं को दूर कर कृतकार्य हुआ करते हैं।

सततोद्योगी पुरुष, भाग्य में क्या है, इसकी चिन्ता नहीं करते। हम अकेले व असहाय हैं, ऐसी चिन्तायें भी उन्हें नहीं सतातीं। बहुत से मनुष्य यह कहा कहते हैं कि हमें समय ही नहीं मिलता, परन्तु वह नहीं जानते कि ऐसा उनके आलस्य के कारण ही है। लिखा है :—" A deligent can always find leisure, but a lazy never. "

सततोद्योग से हम न केवल सांसारिक आकांक्षाओं को ही पूर्ण कर सकते हैं, परन्तु अपनी आयु भी समय के सद् व्यवहार के कारण बढ़ा लेते हैं।

चरित्र की उच्चता

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः ।
क्षये ह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वा नियच्छति ॥

हमारे आहार का अन्तिम परिणाम वीर्य्य है, उस की हर प्रकार से रक्षा करनी चाहिये। इस के नाश से न केवल बहुत से रोग ही आ घेरते हैं, किन्तु मृत्यु तक आ धर दबाती है। पर हम लोगों की अवस्था ही दूसरी हो गई है; कहीं कोई स्त्री, साढ़ी या अच्छे वस्त्र वाली दिखाई दी कि उधर दृष्टि जम गई; वह चाहे अपनी दादी के समान आयु वाली ही क्यों न हो। आठों प्रकार के मैथुनों में प्रेक्षण आ चुका है, इस लिए इस से बचना चाहिये। हमारा कर्त्तव्य 'मातृवत् परदारेषु' पर आचरण करना है। जो स्त्री अपने से बड़ी हो, उसे माता समझें, बराबर वाली को बहिन मानें और छोटी आयु वाली को पुत्री-वत् जानें। यदि किसी स्त्री की ओर देखने से हमारे अन्दर कुविचार उठने लगे, तो हमें उसी समय अपनी माता का स्मरण करना चाहिये; यदि उस के किसी अङ्ग को देख कर हमारे अन्दर कुभावना उठी हो, तो माता के उसी अङ्ग का विचार कल्पना से करना चाहिये। फिर यह विचारे कि इस स्त्री में सौन्दर्य्य कहां है? क्या इसके अन्दर भी रक्त, मांस व हड्डियां नहीं हैं? क्या इसके अन्दर बलग़म, मूत्र, विष्ठा (मल) आदि नहीं हैं? मैं किस वस्तु को सौन्दर्य्यवती कह रहा हूं। श्मशान का विचार भी अच्छा है। वहां किसी स्त्री की खोपड़ी या टूटी-फूटी हड्डियां देखी हों, तो उन का स्मरण करना चाहिये। एक कथा है:—

एक बार एक राजकुमार अपने पिता के मन्त्री की कन्या पर अत्यन्त आसक्त हो गया, राज काज तक छोड़, उसे, उसका ही ध्यान रहने लगा। मन्त्री-कन्या को जब यह पता चला, तो वह चिन्तित हुई कि ऐसा होना ठीक नहीं, राज्य कार्य्य अवश्य होना चाहिये। उसने कुछ देर सोच विचार कर राजकुमार को बुलवाया और आदर से कहा, 'मुझे आपकी प्रार्थना सहर्ष स्वीकार है, पर आपको अपने इस निश्चय पर डटा रहना होगा'। राजकुमार ने उत्तर दिया, 'मैं अपने निश्चय से कैसे हट सकता हूं'। मन्त्री कन्या ने तीसरे दिन फिर आने का निमन्त्रण देकर, राजकुमार को विदा किया। उस ने राजकुमार के जाते ही अपने वैद्य को बुलाया और एक तेज़ जुलाब की गोली ले ली। राजकुमार के आने से पहिली रात, वह उस गोली को एक गिलास ठंडे जल से निगल गई। ब्राह्म-मुहूर्त से ही उसे दस्त आना प्रारम्भ हो गये। निश्चित समय पर पधार कर राजकुमार देखता है कि मन्त्री कन्या चारपाई पर पड़ी है न वह रूप है न सौन्दर्य्य; केवल हड्डियों के पञ्जर पर पीली सी त्वचामात्र है। आस पास से ऐसी दुर्गन्ध आ रही है कि श्वास भी नहीं लिया जाता। मन्त्री कन्या ने राजकुमार को अपने पास बैठने को कहा। वह नाक भौं सिकोड़ता हुआ कुछ हट कर बैठा और पूछने लगा, 'तुम्हें क्या हुआ है, तुम्हारा सौंदर्य्य कहां गया'? वह बोली, 'हे राजकुमार! मैं समझ गई कि तुम मेरे से प्रेम नहीं करते, केवल मेरे सौंदर्य्य को ही चाहते थे, सौंदर्य्य तो एक क्षणिक वस्तु है, वह चली गई। जाओ! अब जाकर राज्य कार्य्य संभालो'। इन शब्दों से राजकुमार का काम ऐसा दूर हुआ कि उसने

आजन्म ब्रह्मचर्य्य पालन की प्रतिज्ञा की। पाठक अब समझ गए होंगे कि मन की भावना से ही रूप का चमत्कार दीखता है।

निष्काम भाव लाने के लिये शुद्ध विचारों तथा मन की पवित्रता की बहुत आवश्यकता है और जब तक मन पवित्र न हो, पूर्णतया निष्काम भाव का आना असम्भव है। इस की पवित्रता के लिये ही हम ईश्वर-प्रार्थना व स्वाध्याय करते हैं। सादगी, सत्सङ्ग, सततोद्योग आदि भी इसी को वश करने के लिये हैं। मन का संयम करने वाला ब्रह्मचर्य्य महाव्रत का बहुत सुगमता से पालन कर सकता है।

यदि मनुष्य अपनी इच्छा के सामने झुकने लगेगा, तो यह उसे सदा झुकाती जायगी और अपना दास बना लेगी। परन्तु इच्छा को पहिली बार ही पवित्र कर लेने से फिर वह कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। जब भी हमारे अन्तरात्मा से यह शुद्ध आवाज़ निकले कि 'देख क्या कर रहा है, यह तेरे लिये उचित नहीं है', तभी उसे छोड़ कर सत्य का अनुसरण करने से कार्य्य बहुत जल्दी बनता है। इच्छा शक्ति (Will power) भी इसी का नाम है। इस का जितना भी उपयोग किया जाय, उतना ही चरित्र सदाचार पूर्ण बनता है। अच्छे बालक में सदा इच्छा रहती है कि जैसा भी कार्य्य उस के परिवार वाले करते हैं, वह वैसा ही या उस से कुछ अच्छा कर दिखावे। ऐसा करने देने से, उस में आत्मविश्वास व आत्मसंयम आता है। कई एक माता पिता व गुरु, बालकों की सत् इच्छाओं को भी रोका करते हैं; पर रोकना तभी ठीक होता है, जब वह अनुचित या हानिकारक कार्य्य कर रहा हो।

कामना कभी भोग से शान्त नहीं होती, घी डालने पर अग्नि के समान, वह अधिकाधिक बढ़ती रहती है। आज कल बहुत से युवक व युवतियां परस्पर भाई बहिन का नाता रखने के बहुत उत्सुक होते हैं। भाई बहिन के पवित्र शब्द व्यवहार होते सुन माता, पिता, व अन्य सम्बन्धी निश्चिन्त हो जाते हैं। परन्तु वह, कलिकाल के जीव, पाप-पङ्क में मग्न हो जाते हैं। आज कल ऐसी बहुत सी घटनाएं, प्रकट या अप्रकट रूप से, सभी जगह घट रही हैं। ऐसे लोग अपने आप को अच्छा कहलाने व पाप को छिपाने के लिये दिखलावे को कई एक ऐसे कार्य्य करते हैं जिन से उन की प्रशंसा हो; परन्तु सांच को आंच नहीं होती और पाप देर तक छिपाने से भी नहीं छिपता।

रक्षा बन्धन का पवित्र त्यौहार भी बहिनपन का भाव लाने में उकसाता है। कृष्ण व द्रौपदी परस्पर मिलते थे, परन्तु उन का मिलना भाई बहिन का सा था। मुग़ल राज्य में भी हम देखते हैं कि मुग़ल बादशाह एक राखी भेज देने से ही बहिन सा व्यवहार करने लगते थे। डाकू, पापी लोग भी एक बार राखी पहिन कर सारी आयु कभी भी अपने मन में कुभाव न आने देते थे। अब जो भी ख़राबियां हम लोगों में आ रही हैं; वह अन्य सभ्यताओं के परिणाम-स्वरूप ही हैं। हमारे यहां तो चाचा, मामा आदि की पुत्री, हमारी बहिन ही है, और कुछ नहीं।

जब काम भाव का लेश मात्र भी हमारे में नहीं, तब हमें किसी उत्तेजक औषधि (स्टिमुलैण्ट) के सेवन की आवश्यकता नहीं रहती। टानिक या शरीर का उपचय करने वाली कोई औषधि, यदि किसी कारण विशेष से सेवन भी करनी पड़े, तो

पहिले पता कर लेना चाहिये कि यह उत्तेजक तो नहीं। सोडा-वाटर वाले आज कल बहुत से, थकावट व शक्ति बढ़ाने वाले, पदार्थ बेचते हैं। कोला टानिक आदि में कोला नट व कोको के पत्ते आदि होते हैं, अतः उनका सेवन ब्रह्मचारी के लिये उचित नहीं।

हमारी पाठिकाओं को जहां भी माता, भगिनी या पुत्री शब्द आये हैं व आवेंगे; वहां पिता, भाई व पुत्र शब्द पढ़ने चाहियें। हमें दुःख है कि प्रत्येक स्थान पर इच्छा रहते भी हम ऐसा नहीं कर सके। परन्तु इसी पुस्तक में कई एक प्रकरण ऐसे लिखे जा रहे हैं जो उनके लिये विशेषकर उपयोगी होंगे।

निर्व्यसना

व्यसनानि सन्ति बहवो, व्यसन द्वयमेव केवलं व्यसनम्।
विद्याभ्यसनं व्यसनं ह्यथवा हरिपादसेवनं व्यसनम् ॥

संसार में नाना व्यसन हैं। तुम उन में न फंस कर केवल दो व्यसन ही करो। एक तो विद्या व ज्ञान की प्राप्ति के लिये अभ्यास, दूसरा ब्रह्मचर्य्य पूर्वक भगवत् स्मरण। बाकी सब व्यसन हानिकारक हैं। अन्य व्यसन करने से एक तो लोक निन्दा होती है तथा अपना नाश। दूसरे, व्यसन करते समय हमारे अन्दर भय रहता है कि कहीं कोई देख न ले। यदि कोई देख ले, तो उस को छिपाने के लिये और पाप करना पड़ता है। इतने पर भी यदि इसकी इति श्री हो जाय, तो भी ठीक है। पर देखा जाता है कि एक व्यसन के लिये कुछ ही समय में उसके जैसा एक और व्यसन करना अनिवार्य्य हो जाता है और हम अपने कर्त्तव्य से च्युत होकर पाप के भागी बन जाते हैं। हमें छोटा

सा भी बुरा व्यसन न करना चाहिये। आलस्य भी एक व्यसन ही है, वह भी एक बार लगने पर कठिनता से छूटता है। लिखा है:—

भिक्षो मांस निषेवणं प्रकुरुषे, किं तेन मद्यं विना।
मद्यं चापि तव प्रियं, प्रियमहो वाराङ्गनाभिः सह॥
वेश्या द्रव्यरुचिः कुतस्तव धनं द्यूतेन चौर्य्येण वा।
चौर्य्य-द्यूत परिग्रहोऽपि भवतो भ्रष्टस्य कान्या गतिः॥

अर्थात् एक मांगने वाले को एक बार मांस खाने की बान पड़ गई। उसके कुछ दिन बाद ही उसे शराब की आवश्यकता प्रतीत होने लगी, और उसके लग जाने पर उसे वेश्यागमन करने को चित्त चाहा; परन्तु इन सब की पूर्ति के लिये पैसा न था। अब उसके लिये दो ही बातें रह गईं अर्थात् वह चोरी से या जुआ खेल कर पैसा कमावे। अब पाठक ! बताइये कि भ्रष्ट हुए मनुष्य की क्या दशा होती है।

दृढ़ प्रतिज्ञा

अकृत्यं नैव कर्त्तव्यं, प्राणत्यागेऽपि संस्थिते।
न च कृत्यं परित्याज्यं, धर्म एष सनातनः॥ मनु

प्राण भले ही चले जायं, पर हमें, जो काम हमारे करने का नहीं है, वह न करना चाहिये; और जो काम हमारे करने का है, वह करते हुए, कैसी भी आपदा क्यों न आए, करके ही रहना चाहिये, यही हमारा धर्म्म व कर्त्तव्य है।

पाठकगण व पाठिकाओ ! हमारा निवेदन दो एक प्रकरण लिखने के अनन्तर समाप्त है। अब आप इस महाव्रत की तन, मन व वचन से पालना का प्रण लेकर अपना, जाति व देश

का कल्याण करें। हम में से बहुतों का स्वभाव होता है, 'अच्छा भाई! मुझे एक दो दिन सोच लेने दो, तो मैं यह प्रतिज्ञा करूंगा' आदि, पर जब घर में आग लग रही हो, तो कोई यह नहीं कहता कि एक दो दिन बाद बुझावेंगे। जब आप पेट दर्द से चिल्ला रहे हों और कोई आपसे कह दे, 'कल वैद्य को दिखा, दवाई देंगे', तो कैसा बुरा लगता है। इसी तरह यह बात सोचने विचारने की नहीं है। जब मनुष्य गिरने लगता है, तो सहसा किसी भी वस्तु का आश्रय ले लेता है। वह यह नहीं सोचता कि मैं किस वस्तु का आश्रय लूं व किस का न लूं। उस समय तो डूबते को तिनके सहारा पर्याप्त होता है। यदि आप इस सद्व्रत के निश्चय में या प्रण में देर कर रहे हैं, तो हम समझेंगे कि आप के हृदय में अभी अन्तरात्मा से विषय के त्याग का भाव ही उत्पन्न नहीं हुआ।

आपने इतनी बातें, महात्माओं के उदाहरण व ब्रह्मचर्य्य के सन्नियम पढ़ लिये हैं; आप यह भी समझते हैं कि यदि आप इन पर आचरण करें, तो आप के जीवन में एक अद्भुत परिवर्तन आ जायगा। आप के इस व्रत के धारण से आप का जीवन व हमारा श्रम सफल होगा। आप आज से इन बातों को घटाना प्रारम्भ कीजिये। लिखा है:—

बेसूद है किया नहीं, जिस ने फ़कत कहा।
अकबर ने यह कहा, तो कहो क्या गलत कहा॥

हम एक बार फिर आग्रह करते हैं कि आप पुस्तक हाथ से रखने के पहिले ही पूर्ण ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कीजिये। जब आप पवित्र विचार और इच्छा शक्ति का प्रयोग करते

हुए तन, मन व वाणी से इस के पालन का प्रयत्न करेंगे, तो कोई कारण नहीं कि आप अपने व्रत के पालन में सफल न हों। आप के ब्रह्मचारी होने से, आप की सन्तान भी पूर्ण ब्रह्मचारी, कर्म निष्ठ व सत्य परायण होगी।

भीष्म पितामह के शब्द याद रखिये और सच्ची प्रतिज्ञा करने से पीछे न हटिये।—

न त्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथञ्चन।

जो बात सच्ची है, उसे मैं कुछ भी क्यों न हो जाय, छोड़ नहीं सकता।

वाटर्लू युद्ध का सेनापति वैलिंगटन भी निम्न शब्दों में आप को यही परामर्श देता है:—

सत्य मार्ग पर चल कर अपना कर्त्तव्य पालन करने से बढ़ कर संसार में और कोई सफलता की कुञ्जी नहीं है। जो लोग ऐसा नहीं करते उन का जीवन निष्फल है। इस लिये

'हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम।'

It is very important.

स्वप्नदोष-प्रमेह चिकित्सा

मनुष्य को चाहिये कि वह प्रकृति-नियमों को समझे और उन पर चले। उसे अपने कर्त्तव्य पथ पर नियम से चलते हुए, किसी भी औषधि की आवश्यकता नहीं; उसे केवल प्राकृतिक नियमों का, वह किस किस प्रकार से उल्लंघन कर रहा है, यह पता होना चाहिये, जिस से वह उन पर चल कर अपनी देह की रक्षा व उसका विकास कर सके। मनुष्य को शुद्ध प्रेम, सहानुभूति, अच्छे मित्रों व शब्दों की आवश्यकता होती है, झूठी बातों व अपने आप जान बूझ कर, आंशिक आत्महत्या की नहीं। यदि हम प्रकृति के नियमों से दूर चले जा चुके हों और आंशिक आत्महत्या का अंश भी बहुत बहुत बड़ा हो, तो दवाइयां भी कुछ विशेष सहायता नहीं करतीं। औषधियां उसी की सहायता करती हैं, जिसकी सहायता प्रकृति व वह स्वयं करता है।

स्वप्नदोष प्रमेह आदि के सहज उपाय हम पहिले प्रकरणों में दे आये हैं, परन्तु यहां हम साधारण चिकित्सा लिखते हैं। आज कल यह रोग बहुतायत से पाये जाते हैं, अतः इन से बचना चाहिये। हम इनके आधिक्य के कारण तथा बचने के नियम लिखते हैं। रोगी को अपनी चिकित्सा किसी अनुभवी व पढ़े लिखे वैद्य से अपनी प्रकृति के अनुसार करानी चाहिये। साधारण योग्यता के पैसा बटोरने वाले नामधारी वैद्यों से नहीं।

१—स्वप्नदोष प्रायः बचपन की ख़राबियों (हस्त-मैथुन आदि) के कारण होता है। पर यह महीने में एक बार, या दो बार भी हो जाय, तो इसकी विशेष चिन्ता नहीं करनी चाहिये। ऐसा बहुधा स्वाभाविक भी हो जाता है।

२—रात्रि को अधिक भोजन करने, या सोने से पहिले दूध पीने से यह हो जाता है।

३—स्वप्नदोष अधिकतर प्रातः तीन बजे से छे बजे के अन्दर अन्दर होता है। अतः रात्रि को देर से सोने वालों और देर तक सोते रहने वालों को हो जाता है।

४—कब्ज़ या ज़्यादा गरम खुश्क वस्तुएं, मूंगफली, खटाई, तेल आदि के अधिक सेवन का परिणाम भी यही होता है।

५—किसी स्त्री, या बालक का कुभाव से स्मरण करने से भी वीर्य्य स्वप्न में अपने आप पानी की तरह बह निकलता है।

इस रोग से छुटकारा पाने के लिए पूर्वोक्त नियमों के साथ ही उपरिलिखित बातों से भी बचना चाहिये। रात्रि को सोते समय कुछ न खाया जाय, सायं भोजन सोने से दो तीन घण्टे पहिले, हलका व थोड़ी मात्रा में करना चाहिये। ऐसा करने से नस्व८ दो के कारण होने वाला स्वप्नदोष नहीं होता। इसके अतिरिक्त पहिला खाया हुआ भोजन पचने के अनन्तर ही खाना चाहिये। बार बार खाते रहना ठीक नहीं।

रात्रि को सोने से पहिले मूत्र त्याग कर सोना व अधिक पानी न पीना चाहिये।

सोने से पहिले मूत्रेन्द्रिय को एक लोटा शीतल जल से धो डालना लाभ करता है; धोते समय मलना नहीं चाहिये।

जब भी हृदय में कुविचार आवे या दुःस्वप्न के कारण नींद खुल जाय, तभी प्राणायाम कर लेना चाहिये।

आसनों का व्यायाम नियम पूर्वक करे।

भोजन के एक दम बाद ही सोना ठीक नहीं, और न ही

एक करवट सोते रहना चाहिये। भोजन ऐसा खावे कि कब्ज़ न हो। पालक, बाथू, टिमाटर खीरा आदि ले। इतने पर भी कब्ज़ रहे, तो निम्न में से किसी एक वस्तु का व्यवहार करे।

१—बढ़िया हरीड़ के छिलके का चूर्ण डेढ़ मासा, एक रत्ती नमक मिला कर शीतल जल से सोते समय ले।

२—ईसबगोल का छिलका (भूसी) छे मासा, दुगनी खांड मिला कर सायं भोजन से एक मिनट पहिले ले।

३—बादाम रोगन एक तोला या एक बड़ा चम्मच सोने से एक घण्टा पूर्व ले।

४—आलिव आयल एक तोला या एक बड़ा चम्मच सोने से एक घण्टा पहले ले।

अपनी अपनी प्रकृति व आवश्यकता के अनुसार यह कम या ज़्यादा लिये जा सकते हैं। कब्ज़, इतने पर भी ठीक न हो तो कोई औषध सेवन करे।

प्रमेह का वर्णन हम पहले भी कर आये हैं। जागते सोते वीर्य्य का स्वयं या किसी स्त्री के देखने या कामोत्तेजक बातचीत के सुनने से बह जाना प्रमेह है। कब्ज़ होने की अवस्था में शौच के समय लेसदार वस्तु का निकलना भी इसी का प्रमाण है। हस्त मैथुन, अति मैथुन व कुविचारों में लिप्त रहने से भी यह आ घेरता है। इसके परिणाम स्वरूप मूत्र अधिक आने लगता है, स्मरणशक्ति कम हो जाती है तथा सिर व कमर दर्द होने लगता है। अण्डकोष लटक जाते हैं। मन चञ्चल हो जाता है। भूख नहीं लगती; लगे भी तो खाया पिया देह को नहीं लगता। चेहरा मुरझाया रहता है। साधारण रोगी के लिये निम्न में से कोई एक औषध सेवन करना ठीक होगा।

१—चन्द्रप्रभावटी २ गोली प्रतिदिन
२—लोह रसायन २ गोली प्रतिदिन
३—पूर्णचन्द्ररस २ गोली प्रतिदिन
४—वसन्त कुसुमाकर १ गोली प्रतिदिन
५—नाग भस्म ½ रत्ती प्रति दिन
६—सुवर्ण वङ्ग ½ से १ रत्ती प्रतिदिन

नम्बर १, २, ३ का सेवन, आंवले भिगो कर उस के पानी से या गरमी की मौसम में, मग़ज़ धनियां डेढ़ मासा, ब्राह्मी सात पत्ते, शीतलचीनी एक मासा को घोट, छान कर, करे। नम्बर ४ शहद में मिला कर चाटें। नंबर ५ मुरब्बा आंवला व ६ मुरब्बा गाजर से लें।*

मस्तिष्क की कमज़ोरी या स्मरणशक्ति की हीनता हो, तो ऊपर लिखी गोलियां, ब्राह्मी पत्र ३–६ मासा, बादाम ३०–५० गिरी तक के साथ लेनी चाहियें। बादाम की गिरी रात को भिगो दें, प्रातः छिलका उतार और ब्राह्मी के पत्र भी साथ ही डाल कर रगड़ना चाहिये। फिर छान व मिश्री मिला कर पी ले। सर्दी की मौसम हो, तो इसको एक उबाला दिया जा सकता है।

यदि स्वप्नदोष के साथ ही साथ भूख न लगती हो या हाज़मा ठीक न रहता हो, तो निम्न आरिष्टों में से एक सवा तोला या सवा बड़ा चम्मच दोनों समय भोजन के बाद, थोड़ा जल मिला कर, पीना चाहिये।

१—अश्वगन्धारिष्ट। २—देवदार्व्याद्यरिष्ट।

* यदि पाठक इन औषधों व आगे दी जाने वालों में से किसी को स्वयं बनाना चाहें, तो भैषज्यरत्नावली हिन्दी टीका वाली या योगरत्नाकर से नुसख़ा देखकर बना सकते हैं। स्त्री रोग चिकित्सा के नुसख़े भी वहां मिलेंगे।

यदि यह कष्ट, ज्वर आदि हो चुकने के अनन्तर आरम्भ हुआ हो, तो इसके बदले निम्न में से एक सेवन करे।

१—अमृतारिष्ट २—दशमूलासव

मस्तिष्क व स्मरण शक्ति को बढ़ाने के लिये:—

महात्रिफला घृत ६–९ मासा दूध से प्रातः या

सुवर्ण भस्म २ चावल, मक्खन के साथ लें। सारस्वतारिष्ट भी लाभ करता है। वीर्य्य के अन्दर पतलापन हो तो

कौंचबीज का मग़ज़	१ तोला	विदारीकन्द	१ तोला
शतावर	,,	बहमनसफेद	,,
मूसली सफेद	,,	समुद्र सोख	,,
सालब मिश्री	,,	बुरादा संदल सफेद	,,
मग़ज़ धनियां	,,		

कपड़ छान कर दो मासा प्रातः व दो मासा सायं बराबर, खांड मिला कर दूध या पानी से लेना चाहिये। इस में सभी औषध ऐसी हैं कि मात्रा के न्यूनाधिक्य से भी कोई डर नहीं रहता। इसी में बङ्गभस्म (कुश्ता कलई) भी एक एक रत्ती, हर एक पुड़िया में मिलाया जा सकता है।

स्वप्नदोष व प्रमेह पर हमारा अनुभूत योग(नुसख़ा) :—अभ्र भस्म, लोह भस्म, जायफल, जावित्री, आंवला, बङ्ग भस्म प्रत्येक समभाग, आंवला के स्वरस से घोट कर तीन रत्ती की दो गोली प्रतिदिन लें।

चन्द्रप्रभावटी :—का प्रयोग हम ने सभी प्रकार के प्रमेह व स्वप्नदोष आदि के लिये लिखा है, परन्तु यह रसायन गुण-कारक औषध बहुत से रोगों में लाभ करती है। प्रदर, स्त्रियों की आर्तव पीड़ा, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अण्डवृद्धि, कटिशूल,

मन्दाग्नि व शुक्रविकार को दूर करती तथा बल वीर्य्य को बढ़ाती है। इतना सब होते हुए भी कब्ज़ को नहीं होने देती, किन्तु मल साफ़ आता है। छुहारे की गिटक का चूर्ण चार चार रत्ती सायं प्रातः लेना भी स्वप्नदोष को लाभ करता है।

इन औषधियों के सेवन करने पर भी ठीक निदान (diagnosis) न होने के कारण कोई लाभ न हो, तो किसी वैद्य का परामर्श लेना चाहिये। हम अपने पाठक व पाठिकाओं को स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई भी सम्मति बिना किसी फीस के देने को हर समय उपस्थित हैं।

स्त्री रोग चिकित्सा

मासिक धर्मः—के दिनों में लस्सी आदि पीने या कोई वातकर पदार्थ खाने से या किसी और कारण से मासिक के समय पीड़ा हुआ करती है। प्रायः मासिक कुछ कम आता है। ऐसे समय में रजःप्रवर्तिनी वटी ३ गोली प्रतिदिन अर्क सौंफ से या ऐसी किसी और औषध का प्रयोग करना चाहिये। महायोगराज गुग्गुल भी लाभ करता है। इन दोनों औषधों का प्रयोग मासिक के दिनों में करे। दर्द के साथ ही मासिक की कुछ अधिकता हो या कोई और आर्तव सम्बन्धी अभ्यन्तरीय विकार हों, तो फल घृत या फल कल्याण घृत ६—१२ मासा प्रतिदिन गरम दूध से लेना चाहिये।

प्रदरः—रोग में हमारे पूर्व लिखे सत्-नियमों का पालन श्रेयस्कर है। आसनों में स्त्रियों को केवल शीर्षासन का ही अभ्यास विशेष अवस्थाओं को छोड़ कर करना चाहिये।

इस रोग में निम्न में से किसी एक का व्यवहार करना चाहिये :–

१—पूगी पाक ६—१२ मासा तक दिन में दो बार दूध से

२—चन्द्रप्रभावटी २ गोली प्रतिदिन दूध या जल से।

३—अशोकारिष्ट सवा तोला प्रातः व सायं भोजन के बाद जल मिला कर।

४—नव प्रदरान्तक रस २ गोली, दिन में दो बार।

हमारा अनुभूत योग :—

वासक मूल त्वक् शुद्ध भल्लातक रसौंत बेलगिरि
दारुहलदी का छिलका चिरायता नागरमोथा

प्रत्येक तीन मासा का काढ़ा कर लें, व शहद में मिला कर देने से सभी प्रकार के प्रदर रोगों को लाभ होता है।

हिस्टीरिया के लिये निम्न में से किसी एक का प्रयोग करें :—

ब्राह्मी घृत ६—९ मासा प्रतिदिन गरम दूध से
महाचैतस घृत ,, ,, ,, ,, ,,

रसोन पाक या योगराज गुग्गुल एक एक मासा की दो मात्रा प्रातः सायं, पानी या दूध से लेना चाहिये। अश्वगन्धारिष्ट व देवदार्व्याद्यारिष्ट भी बहुत लाभ करता है।

हमारा अनुभूत योग :—

वच, पिप्पलामूल, मजीठ, अतीस, हरीड़, बहेड़ा, आंवला, खुरासानी अजवायन प्रत्येक समभाग चूर्ण कर ४—६ रत्ती तक एक बार दूध या जल से लें। नसवार कायफल या सफेद कनेर की छाया में सूखे पत्तों की दें। अधिक उत्तम यही है कि किसी अच्छे चिकित्सक को दिखाया जाय।

उपकुर्वाण ब्रह्मचारी

ब्रह्मचर्य काल पूर्ण करके (पुरुष–२५ वर्ष, स्त्री–१६ वर्ष) विवाह कर सकता है। इस आयु में पुरुष व स्त्री सब प्रकार से वीर्य व रज की पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं। लिखा है:—

पञ्चविंशे ततोवर्षे पुमान्नारी तु षोडषे ।
समत्वागतवीर्य्यौं तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ सुश्रुत

आयु की गणना के अनुसार आप विवाह के योग्य हो गये, पर यदि दुर्भाग्य से आप की, की हुई भूल से आप के अन्दर कोई दुर्बलता आ चुकी है या आप किसी रोग से ग्रस्त हैं; तो आप जब तक वह रोग या दुर्बलता जड़ से चला न जाय, तब तक भूल कर भी विवाह न करावें। इनको आप औषधि तथा संयम से जल्दी दूर कर सकेंगे। यदि ऐसा न हुआ, तो आप के पाप का फल किसी दूसरे को भी भोगना पड़ेगा। आप अपनी आर्थिक स्थिति को भी देखिये कि आप क्या कमाते हैं? क्या उस रुपये से गृहस्थी चल सकती है? यदि ऐसा हो, तभी विवाह का नाम लेना ठीक है। आप के माता पिता धनी हैं व विवाह कराने का जोर देते हैं; इतने से ही, अपनी निजी कमाई के बिना, जो विवाह कराते हैं, वह कभी सुखी नहीं होते। आप यदि अपने घर (पिता) का काम संभाल चुके हैं, तो दूसरी बात है।

यदि आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनना चाहते हैं, तो भी सहसा, ऐसा निश्चय न कीजिये। इसे खूब विचारिये। आप के मार्ग में जो जो बाधाएं व प्रलोभन आवेंगे, उन्हें दृष्टि में लाइये; यदि आप में उन सभी को जीतने की शक्ति व सामर्थ्य है; तभी ऐसा दृढ निश्चय कीजिये, अन्यथा आज कल की स्थिति को देखते हुए, बहुत थोड़े व्यक्ति ऐसा कर सकते हैं। उन्हें इस व्रत से, थोड़े बहुत समय बाद गिरना पड़ता है। ऐसे गिरने से यह अच्छा है कि आप ब्रह्मचर्य का निर्दिष्ट समय तक पूर्णतया पालन कर, फिर गृहस्थ में प्रवेश करें। आप को गृहस्थ सम्बन्धी बातें, हमारी पुस्तक 'दम्पति रहस्य'* से पढ़नी चाहियें।

---

* 'दम्पति रहस्य' पुस्तक प्रायः लिखी जा चुकी है, वह शीघ्र प्रकाशित हो कर लेखक से मिल सकेगी।

सदाचार शिक्षा

अपने आचरण पर धब्बा लगने देना, मरने से भी बुरा है।

—भगवान् कृष्ण

यदि तुम मन को वश न कर सको, तो विचाराग्नि में ही दुष्ट विचारों को नष्ट कर दो। —स्वामी दयानन्द

प्रातः काल प्रथम ही जो सद् विचार मन में आवे, उसे मन से जाने मत दो। उसे अपने मन में दृढ़ता से धारण करो। वह दिन भर तुम्हें ठीक मार्ग पर ले जायगा। —महर्षि याज्ञवल्क्य

मेरा सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य्य पालन ही मेरे कामों का सब से अधिक मूल्यवान् अंश है। उस अंश की कोई भूल कर भी अवज्ञा न करे। उसी में मेरा सर्वस्व है। —महात्मा गान्धी

अपने आचार की धन से भी अधिक रक्षा करो। क्योंकि धन तो आता व जाता रहता है। धन के नाश से तुम्हारा कुछ विशेष बिगाड़ नहीं होता, परन्तु आचारहीन मरे से भी बुरा है।

—महाभारत

सच्चा पुरुषार्थ अखण्ड ब्रह्मचर्य्य के अन्तर्गत है। —पातञ्जल

ब्रह्मचर्य्य का पालन मन वचन और काया से होना चाहिये। ....मन को विकार पूर्ण रख कर शरीर को दबाने की कोशिश करना हानिकर है। जहां मन है वहां, अन्त को शरीर गए बिना नहीं रहता। —म० गान्धी

ब्रह्मचर्य्य के प्रताप से लक्ष्मण ने इन्द्रविजयी मेघनाद को मारा, हनुमान ने रावण की लंका को जलाया व भीष्म ने मृत्यु को अपने वश में कर लिया। —पोद्दार

यदि तुम ने अपनी जीभ का संयम व अपने अन्दर उठने

वाले विचारों को पवित्र कर लिया हो, तो कोई कारण नहीं कि तुम अपने उद्देश्य में सफल न होवो। —ओपलसन

ब्रह्मचारी को चाहिये कि वह अपनी आत्मा के प्रति सच्चा बना रहे। उसकी मन्त्रणा के बिना कोई कार्य्य न करे। —छाया

ब्रह्मचारी के सभी मित्र सदाचारी व विश्वसनीय होने चाहियें। —डा० रिची

नवयुवकों के लिये ब्रह्मचर्य्य शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक, तीनों दृष्टिकोणों से उनका रक्षक है। —डा० पैरियन साहिब

The retained life fluid, the Semen, means strength, power and energy.

Continence for the youngman makes for health, incontinence for early physical and mental decline. DR. HOWARD M. D.

Man himself only can destroy his manhood, nature preserves it.

The more healthy and normal an individual is, the better can he not only control his passions, but the less likely is he to be disturbed by continence. Chassaignac.

If wealth is lost nothing is lost, if health is lost something is lost, if character is lost, every thing is lost.

There is not a shadow of proof to show that continence is damaging to health.

The gentleness of perfect freedom can only be won by the discipline of self restraint. BARRETT.

A celibrate life demands a great sacrifice and a considerable amount of intelligence to sublimate the libido into higher channels of activity. PROF. KUMRIA.

—०समाप्त०—